नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-१७

चंद्रप्रज्ञप्ति

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

आगम हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-१७

आगमसूत्र-१७- 'चंद्रप्रज्ञप्ति'

उपांगसूत्र-६ -हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
०१	प्राभृत- १	०५	११	प्राभृत- ११	३४
०२	प्राभृत- २	१२	१२	प्राभृत- १२	३५
०३	प्राभृत- ३	१५	१३	प्राभृत- १३	३७
०४	प्राभृत- ४	१६	१४	प्राभृत- १४	३९
०५	प्राभृत- ५	१७	१५	प्राभृत- १५	४०
०६	प्राभृत- ६	१८	१६	प्राभृत- १६	४१
०७	प्राभृत- ७	१९	१७	प्राभृत- १७	४१
०८	प्राभृत- ८	२०	१८	प्राभृत- १८	४२
०९	प्राभृत- ९	२२	१९	प्राभृत- १९	४४
१०	प्राभृत- १०	२४	२०	प्राभृत- २०	४९

४५ आगम वर्गीकरण						
क्रम	आगम का नाम	सूत्र		क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१		२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२		२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३		२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४		२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५		२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६		३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७		३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८		३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९		३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०		३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११		३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१		३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२		३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३		३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४		३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५		३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६		४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७		४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८		४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९		४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०		४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११		४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२		४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१		---	----------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बू
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	51
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	08
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	60

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'तत्त्वार्थसूत्र'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કુલ પાના 1,35,500

[१७] चन्द्रप्रज्ञप्ति
उपांगसूत्र-६- हिन्दी अनुवाद

[अरिहंतों को नमस्कार हो । यह चन्द्रप्रज्ञप्ति नामक उपांगसूत्र वर्तमान में जिस प्रकार से प्राप्त होता है, उसमें और सूर्य प्रज्ञप्ति उपांग सूत्र में कोई भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती है । दोनों उपांग में बीस-बीस प्राभृत ही है। केवल चंद्रप्रज्ञप्ति में आरंभिक गाथाएं अतिरिक्त है, विशेष कोई भेद नहीं है ।]

प्राभृत-१

सूत्र - १

नवनलिन-कुवलय-विकसित शतपत्रकमल जैसे जिसके दो नेत्र हैं, मनोहर गति से युक्त ऐसे गजेन्द्र समान गतिवाले ऐसे वीर भगवंत ! आप जय को प्राप्त करे ।

सूत्र - २, ३

असुर-सुर-गरुड-भुजग आदि देवों से वन्दित, क्लेश रहित ऐसे अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और सर्व साधु को नमस्कार करके- स्फुट, गंभीर, प्रकटार्थ, पूर्वरूप श्रुत के सारभूत, सूक्ष्मबुद्धि आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट ज्योतिष्-गणराज प्रज्ञप्ति को मैं कहूँगा ।

सूत्र - ४

इन्द्रभूति गौतम मन-वचन-काया से वन्दन कर के श्रेष्ठ जिनवर ऐसे श्री वर्द्धमानस्वामी को जोइसगणराज प्रज्ञप्ति के विषय में पूछते हैं-

सूत्र - ५-९

सूर्य एक वर्ष में कितने मण्डलों में जाता है ? कैसी तिर्यग् गति करता है ? कितने क्षेत्र को प्रकाशित करता है? प्रकाश की मर्यादा क्या है ? संस्थिति कैसी है ? उसकी लेश्या कहाँ प्रतिहत होती है ? प्रकाश संस्थिति किस तरह होती है ? वरण कौन करता है ? उदयावस्था कैसे होती है ? पौरुषीछाया का प्रमाण क्या है ? योग किसको कहते हैं? संवत्सर कितने हैं ? उसका काल क्या है ? चन्द्रमा की वृद्धि कैसे होती है ? उसका प्रकाश कब बढ़ता है? शीघ्रगतिवाले कौन है ? प्रकाश का लक्षण क्या है ? च्यवन और उपपात कथन, उच्चत्व, सूर्य की संख्या और अनुभाव यह बीस प्राभृत हैं ।

सूत्र - १०-११

मुहूर्त्तों की वृद्धि-हानि, अर्द्धमंडल संस्थिति, अन्य व्याप्त क्षेत्र में संचरण और संचरण का अन्तर प्रमाण- अवगाहन और गति कैसी है? मंडलसंस्थान और उसका विष्कम्भ कैसा है ? आठ प्राभृतप्राभृत पहले प्राभृतमें हैं

सूत्र - १२-१३

प्रथम प्राभृत में ये उनतीस परमतरूप प्रतिपत्तियाँ हैं । जैसे की - चौथे प्राभृतप्राभृत में छह, पाँचवे में पाँच, छट्ठे में सात, सातवे में आठ और आठवे में तीन प्रतिपत्तियाँ हैं । दूसरे प्राभृत के पहले प्राभृतप्राभृत में उदयकाल और अस्तकाल आश्रित घातरूप अर्थात् परमत की दो प्रतिपत्तियाँ हैं । तीसरे प्राभृतप्राभृत में मुहूर्त्तगति सम्बन्धी चार प्रतिपत्तियाँ हैं ।

सूत्र - १४

सर्वाभ्यन्तर मंडल से बाहर गमन करते हुए सूर्य की गति शीघ्रतर होती है । और सर्वबाह्य मंडल से अभ्यन्तर मंडल में गमन करते हुए सूर्य की गति मन्द होती है । सूर्य के १८४ मंडल हैं । उसके सम्बन्ध में १८४ पुरुष प्रतिपत्ति अर्थात् मतान्तररूप भेद हैं ।

सूत्र - १५

पहले प्राभृतप्राभृत में सूर्योदयकाल में आठ प्रतिपत्तियाँ कही हैं । दूसरे प्राभृतप्राभृत में भेदघात सम्बन्धी दो और तीसरे प्राभृतप्राभृत में मुहूर्त्तगति सम्बन्धी चार प्रतिपत्तियाँ है ।

सूत्र - १६-१९

दसवें प्राभृत के पहले प्राभृतप्राभृत में नक्षत्रों की आवलिका, दूसरे में मुहूर्त्ताग्र, तीसरे में पूर्व पश्चिमादि विभाग, चौथे में योग, पाँचवे में कुल, छट्ठे में पूर्णमासी, सातवे में सन्निपात और आठवे में संस्थिति, नवमें प्राभृत-प्राभृत में ताराओं का परिमाण, दसवे में नक्षत्र नेता, ग्यारहवे में चन्द्रमार्ग, बारहवे में अधिपति देवता और तेरहवे में मुहूर्त्त, चौदहवे में दिन और रात्रि, पन्द्रहवे में तिथियाँ, सोलहवे में नक्षत्रों के गोत्र, सत्तरहवे में नक्षत्र का भोजन, अट्ठारहवे में सूर्य की चार-गति, उन्नीसवे में मास और बीसवे में संवत्सर, एकवीस में प्राभृतप्राभृत में नक्षत्रद्वार तथा बाईसवे में नक्षत्रविचय इस तरह दसवें प्राभृत में बाईस अधिकार हैं ।

सूत्र - २०

उस काल उस समय में मिथिला नामक नगरी थी । ऋद्धि सम्पन्न और समृद्ध ऐसे प्रमुदितजन वहाँ रहते थे। यावत् यह प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप थी । उस मिथिला नगरी के ईशानकोण में माणिभद्र नामक एक चैत्य था । वहाँ जितशत्रु राजा एवं धारिणी राणी थी । उस काल और उस समय में भगवान महावीर वहाँ पधारे। पर्षदा नीकली । धर्मोपदेश हुआ यावत् राजा जिस दिशा से आया उसी दिशा में वापस लौटा ।

सूत्र - २१

उस काल - उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति थी, जिनका गौतम गोत्र था, वे सात हाथ ऊंचे और समचतुरस्र संस्थानवाले थे यावत् उसने कहा ।

प्राभृत-१-प्राभृतप्राभृत-१

सूत्र - २२

आपके अभिप्राय से मुहूर्त्त की क्षय-वृद्धि कैसे होती है ? यह ८१९ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त का २७/६७ भाग से होती है ।

सूत्र - २३

जिस समय में सूर्य सर्वाभ्यन्तर मुहूर्त्त से नीकलकर प्रतिदिन एक मंडलाचार से यावत् सर्वबाह्य मंडल में तथा सर्वबाह्य मंडल से अपसरण करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मंडल को प्राप्त करता है, यह समय कितने रात्रि-दिन का कहा है? यह ३६६ रात्रिदिन का है ।

सूत्र - २४

पूर्वोक्त कालमान में सूर्य कितने मंडलों में गति करता है ? वह १८४ मंडलों में गति करता है । १८२ मंडलों में दो बार गमन करता है । सर्व अभ्यन्तर मंडल से नीकलकर सर्व बाह्य मंडल में प्रविष्ट होता हुआ सूर्य सर्व अभ्य-न्तर तथा सर्व बाह्य मंडल में दो बार गमन करता है ।

सूत्र - २५

सूर्य के उक्त गमनागमन के दौरान एक संवत्सर में अट्ठारह मुहूर्त्त प्रमाणवाला एक दिन और अट्ठारह मुहूर्त्त प्रमाण की एक रात्रि होती है । तथा बारह मुहूर्त्त का एक दिन और बारह मुहूर्त्तवाली एक रात्रि होती है। पहले छ मास में अट्ठारह मुहूर्त्त की एक रात्रि और बारह मुहूर्त्त का एक दिन होता है । तथा दूसरे छ मास में अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और बारह मुहूर्त्त की एक रात्रि होती है । लेकिन पहले या दूसरे छ मास में पन्द्रह मुहूर्त्त का दिवस या रात्रि नहीं होती इसका क्या हेतु है ? वह मुझे बताईए ।

यह जंबूद्वीप नामक द्वीप है । सर्व द्वीप समुद्रों से घीरा हुआ है । जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल को प्राप्त करके

गति करता है, तब परमप्रकर्ष को प्राप्त उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब वहीं सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से नीकलकर नये सूर्यसंवत्सर को आरंभ करके पहले अहोरात्र में सर्वाभ्यन्तर मंडल के अनन्तर मंडल में संक्रमण कर के गति करता है तब अट्ठारह मुहूर्त्त के दिन में दो एकसट्ठांश भाग न्यून होते हैं और बारह मुहूर्त्त की रात्रि में दो एकसट्ठांश भाग की वृद्धि होती है ।

इसी तरह और एक मंडल में संक्रमण करता है तब चार एकसट्ठांश मुहूर्त्त का दिन घटता है और रात्रि बढ़ती है। इसी तरह एक-एक मंडल में आगे-आगे सूर्य का संक्रमण होता है और अट्ठारसमुहूर्त्त के दिन में दो एकसट्ठांश दो एकसट्ठांश मुहूर्त्त की हानि होती है और उतनी ही रात्रि में वृद्धि होती है । इसी तरह सर्वाभ्यन्तर मंडल से नीकलकर सर्व बाह्य मंडल में जब सूर्य संक्रमण करता है तब १८३ रात्रिदिन पूर्ण होते हैं और तीनसो छासठ मुहूर्त्त के एकसट्ठ भाग मुहूर्त्त प्रमाण दिन की हानि और रात्रि की वृद्धि होती है, उस समय उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि और बारह मुहूर्त्त का दिन होता है । इस तरह यह पहले छ मास पूर्ण होते हैं ।

पहले छ मास पूर्ण होते ही सूर्य सर्व बाह्यमंडल से सर्वाभ्यन्तर मंडल की ओर गमन करता है । जब वह अनन्तर पहले अभ्यन्तर मंडल में संक्रमण करता है, तब दो एकसट्ठांश मुहूर्त्त रात्रि की हानि होती है और दिन में वृद्धि होती है । इसी तरह इसी अनुक्रम से दो एकसट्ठांश मुहूर्त्त रात्रि की हानि और दिन की वृद्धि होत होते जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल में प्रविष्ट करके संक्रमण करता है, तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । यह सूर्य पूर्वोक्त रीति से १८३ दिन तक अभ्यन्तर मंडल की तरफ गमन करता है, इस तरह दूसरे छ मास पूर्ण होते हैं । इसी तरह दो छ मास का एक आदित्य संवत्सर होता है । उसमें एक ही बार अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है तथा एक ही बार १८ मुहूर्त्त की रात्रि और बारह मुहूर्त्त का दिन होता है । पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन और पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि नहीं होती । अनुपात गति से यह हो सकता है ।

प्राभृत-१–प्राभृतप्राभृत-२

सूत्र - २६

अर्द्धमंडल संस्थिति-व्यवस्था कैसे होती है ? दो प्रकार से अर्द्धमंडल संस्थिति मैंने कही है-दक्षिण दिग्भावि और उत्तरदिग्भावि । हे भगवन् ! यह दक्षिण दिग्भावि अर्धमंडल संस्थिति क्या है ? जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से संक्रमण करके दक्षिण अर्द्धमंडल संस्थिति में गति करता है, तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । निष्क्रमण करता हुआ वह सूर्य, नए संवत्सर को प्राप्त करके प्रथम अहोरात्र में दक्षिण के अनन्तर पश्चात् भाग से उसके आदि प्रदेश में अर्द्धमंडल संस्थिति प्राप्त करके गति करता है । तब दो एकसट्ठांश मुहूर्त्त प्रमाण दिन की हानि और रात्रि की वृद्धि होती है । जब वह दूसरे मंडल से नीकलकर दक्षिण दिशा के तीसरे मंडल में गति करता है तब चार एकसट्ठांश मुहूर्त्त की दिन में हानि और रात्रि में वृद्धि होती है । निश्चय से इस अनुक्रम से इसी तरह दक्षिण की तरफ एक एक अनन्तर अभ्यन्तर मंडल में संक्रमण करता हुआ सूर्य सर्व बाह्यमंडल संस्थिति को प्राप्त करता है । उस समय उत्कृष्ट १८ मुहूर्त्त की रात्रि, जघन्य १२ मुहूर्त्त का दिन होता है । इस तरह पहले छ मास में दक्षिण दिग्भाववर्ती अर्धमंडल संस्थिति होती है ।

जब दूसरे छ मास का आरंभ होता है तब वहीं सूर्य सर्व बाह्यउत्तरार्ध मंडल के आदि प्रदेश से क्रमशः सर्व बाह्य अनन्तर दूसरे दक्षिणार्द्ध मंडलाभिमुख संक्रमण करके जब वह अहोरात्र समाप्त होता है तब वह दक्षिण अर्द्धमंडल संस्थिति का संक्रमण करके गति करता है । उस समय रात्रि में दो एकसट्ठांश भाग की हानि और दिन में उतनी ही वृद्धि होती है । इसी क्रम से पूर्वोक्त पद्धति से संक्रमण करता हुआ सूर्य उत्तर की तरफ संक्रमण करते हुए सर्वाभ्यन्तर मंडल में गति करता है तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। इस तरह दूसरे छ मास पूर्ण होते हैं । यहीं आदित्य संवत्सर हैं और यहीं आदित्य संवत्सर का पर्यवसान है ।

सूत्र - २७

हे भगवन् ! उत्तरदिग्वर्ती अर्द्धमंडल संस्थिति कैसी है ? यह बताईए । दक्षिणार्द्धमंडल की संस्थिति के समान

ही उत्तरार्द्धमंडल की संस्थिति समझना । जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर उत्तर अर्द्धमंडल संस्थिति का संक्रमण करके गति करता है तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । उत्तरस्थित अभ्यन्तर से दक्षिण की तरफ संक्रमण होता है और दक्षिण से उत्तर की तरफ उपसंक्रमण होता है । इसी तरह इसी उपाय से यावत् सर्वबाह्य दक्षिणार्ध मंडल की संस्थिति प्राप्त करके यावत् दक्षिण दिशा सम्बन्धी सर्वबाह्यमंडल के अनन्तर उत्तरार्धमंडल की संस्थिति को प्राप्त करते हैं । उत्तर से सर्वबाह्य तीसरी दक्षिणार्धमंडल संस्थिति में गमन करता है। इसी तरह यावत् सर्वाभ्यन्तर मंडल को प्राप्त करते हैं तब दूसरे छह मास होते हैं । ऐसे दूसरे छ मास परिपूर्ण होते हैं। यहीं आदित्य संवत्सर है और यहीं आदित्य संवत्सर का पर्यवसान है ।

प्राभृत-१–प्राभृतप्राभृत-३

सूत्र - २८

कौन सा सूर्य, दूसरे सूर्य द्वारा चीर्ण-मुक्त क्षेत्र का प्रतिचरण करता है ? निश्चय से दो सूर्य कहे हैं-भारतीय सूर्य और ऐरावतीय सूर्य । यह दोनों सूर्य त्रीश-त्रीश मुहूर्त्त प्रमाण से एक अर्द्धमंडल में संचरण करते हैं । साठ-साठ मुहूर्त्तों से एक-एक मंडल में संघात करते हैं । निष्क्रमण करते हुए ये दोनों सूर्य एक दूसरे से चीर्ण क्षेत्र में संचरण नहीं करते किन्तु प्रवेश करते हुए संचरण करते हैं । यह जंबूद्वीप नामक द्वीप सर्व द्वीप समुद्र से घीरा हुआ है । उसमें यह भारतीय सूर्य, मध्य जंबूद्वीप के पूर्वपश्चिम दिशा से विस्तारयुक्त और उत्तरदक्षिण दिशा में लम्बी जीवा के १२४ विभाग करके, दक्षिणपूर्व के मंडल के चतुर्थ भाग में ९२ संख्यावाले मंडलों में संचार करते हैं । उत्तरपश्चिम में मंडल के चतुर्थ भाग में ९१ मंडलों को भारतीय सूर्य चीर्ण करता है । यह भारतीय सूर्य, ऐरावतीय सूर्य के मंडलों को मध्य जंबूद्वीप के पूर्वपश्चिम लम्बे क्षेत्र को छेद करके उत्तरपूर्व दिग्भाग के मध्य में चतुर्भाग मंडल के ९२ मंडल को व्याप्त करके उसमें प्रतिचरण करता है । इसी प्रकार दक्षिणपूर्व दिशा में चतुर्भाग में ९१ मंडलों को प्रतिचरित करता है । उस समय यह ऐरावतीय सूर्य भारतीय सूर्य से प्रतिचरित दक्षिणपश्चिम मध्य में चतुर्भाग ९२ मंडलों को प्रतिचरित करता है। और उत्तर पूर्व में ९१ मंडलों को प्रतिचरित करता है । इस तरह निष्क्रमण करते हुए यह दोनों सूर्य परस्पर एक दूसरे के चीर्ण क्षेत्र को प्रतिचरित नहीं करते, किन्तु प्रवेश करते हुए ये दोनों एक दूसरे के चीर्ण क्षेत्र को प्रतिचरित करते हैं ।

प्राभृत-१–प्राभृतप्राभृत-४

सूत्र - २९

भारतीय एवं ऐरवतीय सूर्य परस्पर कितने अन्तर से गति करता है ? अन्तर सम्बन्धी यह छह प्रतिपत्तियाँ हैं। कोई एक परमतवादी कहता है कि ये दोनों सूर्य परस्पर एक हजार योजन के एवं दूसरे एकसो तैंतीस योजन के अन्तर से गति करते हैं । कोई एक कहते हैं कि ये एक हजार योजन एवं दूसरे १३४ योजन अंतर से गति करते हैं । कोई एक ऐसा कहते हैं कि यह अंतर एक हजार योजन एवं दूसरा १३५ योजन का है । चौथा अन्यतीर्थि का कथन है कि दोनों सूर्य एक द्वीप-समुद्र के परस्पर अंतर से गति करते हैं। कोई यह अन्तर दो-दो द्वीप समुद्रों का बतलाते हैं और छट्ठा परतीर्थिक दोनों सूर्यों का परस्पर अन्तर तीन-तीन द्वीप समुद्रों का बतलाते हैं । भगवंत कहते हैं कि यह दोनों सूर्य की गति का अन्तर नियत नहीं है, वे जब सर्वाभ्यन्तर मंडल से निष्क्रमण करता है तब पाँच-पाँच योजन और एक योजन के पैंतीस एकसट्ठांश भाग के अन्तर से प्रत्येक मंडल में अभिवृद्धि करते हुए और बाह्य मंडल से अभ्यन्तर मंडल की तरफ प्रवेश करते हुए कम करते-करते गति करते हैं ।

यह जंबूद्वीप सर्वद्वीप समुद्रों से परिक्षेप से घीरा हुआ है । जब ये दोनों सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल का संक्रमण करके गति करते हैं तब एक प्रकार से ९९००० योजन का और दूसरा ६४० योजन का परस्पर अन्तर होता है । उस समय उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । निष्क्रम्यमान वे सूर्यों नूतन संवत्सर के पहले अहोरात्र में अभ्यन्तर मंडल के प्रथम मंडल का उपसंक्रमण करके जब दूसरे मंडल में गति करता है, तब ९९६४५ योजन एवं एक योजन के पैंतीस एकसट्ठांश भाग जितना परस्पर अन्तर रखके यह दोनों सूर्य गति करते हैं। उस समय दो एकसट्ठांश मुहूर्त्त दिन की हानि और रात्रि की वृद्धि होती है । जब यह दोनों सूर्य सर्वाभ्यन्तर निष्क्रमण कर दूसरे

मंडल से तीसरे मंडल में गति करते हैं, तब ९९६५१ योजन एवं एक योजन के नव एकसट्ठांश भाग का परस्पर अन्तर होता है । उस समय चार एकसट्ठांश मुहूर्त्त की दिन में हानि और रात्रि में वृद्धि होती है ।

इसी अनुक्रम से निष्क्रम्यमाण दोनों सूर्य अनन्तर-अनन्तर मंडल में गति करते हैं तब पाँच-पाँच योजन और एक योजन के पैंतीश एकसट्ठांश भाग परस्पर अन्तर में वृद्धि होती है और १००६६० योजन का परस्पर अन्तर हो जाता है, तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है । यहाँ छ मास पूर्ण होते हैं । दूसरे छ मास का आरंभ होता है तब दोनों सूर्य सर्वबाह्य मंडल से सर्वाभ्यन्तर मंडल की तरफ संक्रमण करते हुए गति करते हैं । उस समय दोनों सूर्य का परस्पर अन्तर १००६५४ योजन एवं एक योजन के छब्बीश एकसट्ठांश भाग का होता है और अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि के दो एकसट्ठांश मुहूर्त्त की हानि तथा बारह मुहूर्त्त के दिन में दो एकसट्ठांश मुहूर्त्त की वृद्धि होती है । इसी अनुक्रम से संक्रमण करते हुए दोनों सूर्य अभ्यन्तर मंडल की तरफ प्रविष्ट होते हैं तब दोनों सूर्यों का परस्पर अन्तर पाँच-पाँच योजन एवं एक योजन के पैंतीश एकसट्ठांश भाग प्रत्येक मंडल में कम होता रहता है । जब वह दोनों सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल में प्रविष्ट कर जाते हैं उस समय दोनों के बीच ९९६४० योजन का अन्तर रहता है और परमप्रकर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । यह हुए दूसरे छह मास और दूसरे छ मास का पर्यवसान । यहीं है आदित्य संवत्सर ।

प्राभृत-१–प्राभृतप्राभृत-५

सूत्र - ३०

वहाँ कितने द्वीप और समुद्र के अन्तर से सूर्य गति करता है ? यह बताईए । इस विषय में पाँच प्रतिपत्तियाँ हैं । कोई एक कहता है कि सूर्य एक हजार योजन एवं १३३ योजन द्वीप समुद्र को अवगाहन करके सूर्य गति करता है । कोई फिर ऐसा प्रतिपादन करता है की एक हजार योजन एवं १३४ योजन परिमित द्वीप समुद्र को अवगाहीत करके सूर्य गति करता है । कोई एक बताता है की यह अन्तर एक हजार योजन एवं १३५ योजन का है । चौथा परमतवादी का मत है की अर्धद्वीप समुद्र को अवगाहन करता है । पाँचवा कहता है की कोई भी द्वीप समुद्र को अवगाहीत करके सूर्य गति नहीं करता । इन पाँच मतों में जो यह कहता है की ११३३ योजन परिमित द्वीप समुद्रों को व्याप्त करके सूर्य गति करता है, उनके कथन का हेतु यह है की जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल को उपसंक्रमीत करके गति करता है तब ११३३ योजन अवगाहीत करके गति करने के समय परमप्रकर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्य बारह मुहूर्त्त प्रमाण रात्रि होती है । जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल के उपसंक्रमण कर के गति करता है, तब लवणसमुद्र को ११३३ योजन का अवगाहन कर गति करता है । उस समय उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है । इसी प्रकार १३४ एवं १३५ योजन प्रमाण क्षेत्र के विषय में भी है ।

जो अर्ध द्वीप-समुद्र के अवगाहन कर के सूर्य की गति बतलाता है, उन का अभिप्राय यह है कि सूर्य सर्वा-भ्यन्तर मंडल में उपसंक्रमण कर के गति करता है तब अर्द्ध जम्बूद्वीप की अवगाहना कर के गति करता है, उस समय परमप्रकर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । इसी प्रकार सर्व-बाह्यमंडल में भी समझना । विशेष यह कि लवणसमुद्र के अर्द्ध भाग को छोड़कर जब सूर्य अवगाहन करता है तब रात्रि दिन की व्यवस्था उसी प्रकार होती है । जिन मतवादी का कथन यह है कि सूर्य किसी भी द्वीप समुद्र को अवगाहीत करके गति नहीं करता उनके मतानुसार तब ही उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त प्रमाण दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । सर्व बाह्यमंडल के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार से समझना, विशेष यह कि लवणसमुद्र को अवगाहीत करके भी सूर्य गति नहीं करता । रात्रिदिन उसी प्रकार होते हैं ।

सूत्र - ३१

हे गौतम ! में इस विषय में यह कहता हूँ कि जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल को उपसंक्रमीत करके गति करता है तब वह जंबूद्वीप को १८० योजन से अवगाहीत करता है, उस समय प्रकर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ।

इसी तरह सर्वबाह्य मंडल में भी जानना । विशेष यह की लवणसमुद्र में १३३ योजन क्षेत्र को अवगाहीत करता है । उत्कृष्ट १८ मुहूर्त्त की रात्रि और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है

प्राभृत-१–प्राभृतप्राभृत-६

सूत्र - ३२

हे भगवन् ! क्या सूर्य एक-एक रात्रिदिन में प्रविष्ट होकर गति करता है ? इस विषय में सात प्रतिपत्तियाँ हैं। जैसे की कोई एक परमतवादी बताता है की-दो योजन एवं बयालीस का अर्द्धभाग तथा एक योजन के १८३ भाग क्षेत्र को एक-एक रात्रि में विकम्पीत करके सूर्य गति करता है । अन्य एक मत में यह प्रमाण अर्द्धतृतीय योजन कहा है । तीसरा कोई तीन भाग कम तीन योजन परिमित क्षेत्र में एक-एक रात्रि में सूर्य की गति बताता है । चौथा कोई यह प्रमाण तीन योजन और एक योजन के सैंतालीस का अर्द्धभाग तथा एक योजन का १८३ भाग क्षेत्र का एक-एक रात्रिदिन में विकम्पन करके सूर्य गति बताता है । पाँचवा इस गति का प्रमाण अर्द्ध योजन का बताता है । छठ्ठा मतवादी चार भाग कम चार योजन प्रमाण कहता है और सातवां मतवादी कहता है की चार योजन तथा पाँचवा अर्द्ध योजन एवं एक योजन का १८७वां भाग क्षेत्र को एक एक अहोरात्र में विकम्पन करके सूर्य गति करता है ।

भगवंत फरमाते हैं कि दो योजन तथा एक योजन के 48/६१ भाग एक एक मंडल क्षेत्र का एक एक अहोरात्रमें विकम्पन कर सूर्य गति करता है । यह जम्बूद्वीप सर्वद्वीप समुद्रों से घीरा हुआ है, उसमें जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल को उपसंक्रमण कर गति करता है उस समय परमप्रकर्ष प्राप्त उत्कृष्ट १८ मुहूर्त्त का दिन और जघन्या १२ मुहूर्त्त की रात्रि होती है । निष्क्रमण करता हुआ सूर्य नए संवत्सर का आरंभ करते सर्वाभ्यन्तर मंडल के अनन्तर ऐसे पहेले बाह्य मंडल में उपसंक्रमण से गति करता है, तब दो योजन और एक योजन के ४८/६१ भाग को एक अहोरात्रमें विकम्पन कर गति करता है, उस समय २/६१ मुहूर्त्त की दिन में वृद्धि और रात्रि में हानि होती है । वह सूर्य दूसरी अहोरात्रि में तीसरे मंडलमें उपसंक्रमण कर गति करता है तब दो अहोरात्रमें पाँच योजन के ३५/६१ भाग से विकम्पन कर गमन करता है, उस समय ४/६१ भाग मुहूर्त्त की दिन में हानि और रात्रि में वृद्धि होती है । इस प्रकार से निष्क्रमीत सूर्य अनन्तर-अनन्तर मंडल में गति करता हुआ संक्रमण करता है, तब एक अहोरात्र में दो योजन एवं एक योजन के 48/६१ भाग विकम्पन करता हुआ सर्वबाह्य मंडल में पहुँचता है । १८३ अहोरात्र में वह सूर्य ११५ योजन विकम्पन करके गति करता है । सर्वबाह्य मंडल में पहुँचता है तब परमप्रकर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है । यह हुए प्रथम छ मास और छ मास का पर्यवसान ।

दूसरे छह मास में वह सर्वबाह्य मंडल से सर्वाभ्यन्तर मंडल में प्रवेश करता है । प्रथम अहोरात्र में अनन्तर प्रथम मंडल में प्रविष्ट होते हुए वह दो योजन और एक योजन का अडचत्तालीश एकसट्ठांश भाग क्षेत्र को विकम्पन करके गति करता है तब दो एकसट्ठांश मुहूर्त्त की दिन में वृद्धि और रात्रि में हानि होती है । इसी प्रकार से पूर्वोक्त कथनानुसार सर्वबाह्य मंडल की अवधि करके १८३ रात्रिदिन में वह सर्वाभ्यन्तर मंडल में संक्रमण करके पहुँचता है, तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । यह दूसरे छ मास हुए और ये हुआ दूसरे छ मास का पर्यवसान । यह है आदित्य संवत्सर ।

प्राभृत-१–प्राभृतप्राभृत-७

सूत्र - ३३

हे भगवन् ! मंडलों की संस्थिति क्या है ? मंडल संस्थिति सम्बन्ध में आठ प्रतिपत्तियाँ हैं । कोई कहता है कि सर्वमंडल की संस्थिति समचतुरस्र है । कोई विषम चतुरस्र संस्थानवाली बताते हैं । कोई समचतुष्कोण की तो कोई उसे विषम चतुष्कोण की कहता है । कोई उसे समचक्रवाल बताता है तो कोई विषम-चक्रवाल संस्थित कहते हैं । सातवां अर्धचक्रवाल संस्थित कहता है तो आठवां मतवादी उसे छत्राकार बताते हैं ।

इन सब में जो मंडल की संस्थिति को छत्राकार बताते हैं वह मेरे मत से तुल्य हैं । यह कथन पूर्वोक्त नयरूप उपाय से ठीक तरह समझना

प्राभृत-१–प्राभृतप्राभृत-८

सूत्र - ३४

हे भगवन् ! सर्व मंडलपद कितने बाहल्य से, कितने आयाम विष्कंभ से तथा कितने परिक्षेप से युक्त हैं ? इस विषय में तीन प्रतिपत्तियाँ हैं । पहला परमतवादी कहता है कि सभी मंडल बाहल्य से एक योजन, आयाम-विष्कम्भ से ११३३ योजन और परिक्षेप से ३३९९ योजन है । दूसरा बताता है कि सर्वमंडल बाहल्य से एक योजन, आयामविष्कम्भ से ११३४ योजन और परिक्षेप से ३४०२ योजन है । तीसरा मतवादी इसका आयामविष्कम्भ ११३५ योजन और परिक्षेप ३४०५ योजन कहता है । ..... भगवंत प्ररूपणा करते हैं कि

यह सर्व मंडलपद एक योजन के ४८/६१ भाग बाहल्य से अनियत आयामविष्कम्भ और परिक्षेपवाले कहे गए हैं । क्योंकि-यह जंबूद्वीप सर्वद्वीप समुद्रों से घीरा हुआ है । जब ये सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल को उपसंक्रमीत करके गति करता है तब वे सभी मंडलपद एक योजन के अडतालीश एकसट्ठांश भाग बाहल्य से, ९९६४० योजन विष्कम्भ से और ३१५०८९ योजन से किंचित् अधिक परिक्षेपवाले होते हैं, उस समय परमप्रकर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । निष्क्रमण करता हुआ सूर्य नए संवत्सर को प्राप्त करके प्रथम अहोरात्र में जब अभ्यन्तर अनन्तर मंडल से उप-संक्रमण करके गति करता है तब वह मंडलपद के एक योजन के ४८/६१ भाग बाहल्य से, ९९६४५ योजन तथा एक योजन के पैंतीश एकसट्ठांश भाग आयाम विष्कम्भ से और ३१५१०७ योजन से किंचित् हीन परीक्षेपवाला होता है । दिन और रात्रि प्रमाण पूर्ववत् जानना ।

वहीं सूर्य दूसरे अहोरात्र में तीसरे मंडल में निष्क्रमण करके गति करता है तब एक योजन के ४८/६१ भाग बाहल्य से, ९९६५१ योजन एवं एक योजन के ९/६१ भाग आयामविष्कम्भ से तथा ३१५-१२५ योजन परिक्षेप से कहे हुए हैं । दिन और रात्रि पूर्ववत् । इस प्रकार से इसी उपाय से निष्क्रमीत सूर्य अनन्तर-अनन्तर मंडल में गति करता है । उस समय पाँच योजन और एक योजन के ३५/६१ भाग विष्कम्भ वृद्धि करते करते अट्ठारह-अट्ठारह योजन वृद्धि करते सर्वबाह्य मंडल में पहुँचते हैं । जब वह सूर्य बाह्य मंडल में उपसंक्रमण करके गति करता है तब वह मंडलपद एक योजन के ४८/६१ भाग बाहल्य से, १००-६६० योजन आयामविष्कम्भ से तथा ३१८३१५ योजन परिक्षेप से युक्त होता है । उस समय उत्कृष्ट १८ मुहूर्त्त की रात्रि, जघन्य १२मुहूर्त्त का दिन होता है । यह हुए छ मास

इसी प्रकार वह सूर्य दूसरे छ मासमें सर्व बाह्यमंडल से सर्वाभ्यन्तर मंडलमें प्रवेश करता है । प्रथम अहोरात्र में जब वह सूर्य उपसंक्रमण कर अनन्तर मंडल पदमें प्रविष्ट होता है तब मंडल पदमें एक योजन के अडचत्तालीश एकसट्ठांश भाग बाहल्य से हानि होती है, १००६५४ योजन एवं एक योजन का २६/६१ भाग आयामविष्कम्भ से तथा ३१८२५७ योजन परिक्षेप से युक्त होता है । रात्रि-दिन का प्रमाण पूर्ववत् जानना । प्रविश्यमाण वह सूर्य अनन्तर-अनन्तर एक एक मंडल में एक एक अहोरात्र में संक्रमण करता हुआ पूर्व गणित से सर्वाभ्यन्तर मंडल में पहुँचता है तब वह मंडल पद एक योजन के अडचत्तालीश एकसट्ठांश भाग बाहल्य से, ९९६४० योजन आयामविष्कम्भ से तथा ३१५०७९ परिक्षेप से होता है । शेष पूर्ववत् यावत् यह हुआ आदित्य संवत्सर ।

यह सर्व मंडलवृत्त एक योजन के अडचत्तालीश एकसट्ठांश भाग बाहल्य से होते हैं । सभी मंडल के अन्तर दो योजन विष्कम्भवाले हैं । यह पूरा मार्ग १८३ से गुणित करने से ५१० योजन का होता है । यह अभ्यन्तर मंडल-वृत्त से बाह्यमंडलवृत्त और बाह्य से अभ्यन्तर मंडलवृत्त मार्ग कितना है ? यह मार्ग ११५ योजन और एक योजन का अडचत्तालीश एकसट्ठांश भाग जितना है ।

प्राभृत-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–२

प्राभृतप्राभृत-१

सूत्र - ३५

हे भगवन् ! सूर्य की तिर्छी गति कैसी है ? इस विषय में आठ प्रतिपत्तियाँ हैं । (१) पूर्वदिशा के लोकान्त से प्रभातकाल का सूर्य आकाश में उदित होता है वह इस समग्र जगत् को तिर्छा करता है और पश्चिम लोकान्त में संध्या समय में आकाश में अस्त होता है । (२) पूर्वदिशा के लोकान्त से प्रातःकाल में सूर्य आकाश में उदित होता है, तिर्यक्लोक को तिर्छा या प्रकाशीत करके पश्चिमलोकान्त में शाम को अस्त हो जाता है । (३) पूर्वदिशा के लोकान्त से प्रभात समय आकाश में जाकर तिर्यक्लोक को तिर्यक् करता है फिर पश्चिम लोकान्त में शाम को नीचे की ओर परावर्तीत करता है, नीचे आकर पृथ्वी के दूसरे भाग में पूर्व दिशा के लोकान्त से प्रातःकाल में फिर उदित होता है । (४) पूर्वदिशा के लोकान्त से प्रातःकाल में सूर्य पृथ्वीकाय में उदित होता है, इस तिर्यक्लोक को तिर्यक् करके पश्चिम लोकान्त में शाम को पृथ्वीकाय में अस्त होता है । (५) पूर्व भाग के लोकान्त से प्रातःकाल में सूर्य पृथ्वीकाय में उदित होता है, वह सूर्य इस मनुष्यलोक को तिर्यक् करके पश्चिम दिशा के लोकान्त में शाम को अस्ताचल में प्रवेश करके अधोलोकमें जाता है, फिर वहाँ से आकर पूर्वलोकान्त में प्रातःकालमें सूर्य पृथ्वीकायमें उदित होता है ।

(६) पूर्व दिशावर्ती लोकान्त से सूर्य अप्काय में उदित होता है, वह सूर्य इस मनुष्यलोक को तिर्यक् करके पश्चिम लोकान्त में अप्काय में अदृश्य हो जाता है । (७) पूर्वदिग् लोकान्त से सूर्य प्रातःकाल में समुद्र में उदित होता है, वह सूर्य इस तिर्यक्लोक को तिर्यक् करके पश्चिम लोकान्त में शाम को अप्काय में प्रवेश करता है, वहाँ से अधोलोक में जाकर पृथ्वी के दूसरे भाग में पूर्वदिग् लोकान्त में प्रभातकाल में अप्काय में उदित होता है । (८) पूर्व दिशा के लोकान्त से बहुत योजन-सेंकड़ो-हजारों योजन अत्यन्त दूर तक ऊंचे जाकर प्रभात का सूर्य आकाश में उदित होता है, वह सूर्य इस दक्षिणार्द्ध को प्रकाशित करता है, फिर दक्षिणार्ध में रात्रि होती है, पूर्वदिग् लोकान्त से बहुत योजन-सेंकड़ों-हजारों योजन ऊंचे जाकर प्रातःकाल में आकाश में उदित होता है ।

भगवंत कहते हैं कि इस जंबूद्वीप में पूर्व-पश्चिम और उत्तरदक्षिण लम्बी जीवा से १२४ मंडल के विभाग करके दक्षिणपूर्व तथा उत्तरपश्चिम दिशा में मंडल के चतुर्थ भाग में रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूभाग से ८०० योजन ऊपर जाकर इस अवकाश प्रदेश में दो सूर्य उदित होते हैं । तब दक्षिणोत्तर में जम्बूद्वीप के भाग को तिर्यक्-प्रकाशित करके पूर्वपश्चिम जंबूद्वीप के दो भागों में रात्रि करता है, और जब पूर्वपश्चिम के भागों को तिर्यक् करते हैं तब दक्षिण-उत्तर में रात्रि होती है । इस तरह इस जम्बूद्वीप के दक्षिण-उत्तर एवं पूर्व-पश्चिम दोनों भागों को प्रकाशित करता है, जंबूद्वीप में पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण में १२४ विभाग करके दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पश्चिम के चतुर्थ भाग मंडल में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूभाग से ८०० योजन ऊपर जाकर प्रभातकाल में दो सूर्य उदित होते हैं ।

प्राभृत–२ प्राभृतप्राभृत-२

सूत्र - ३६

हे भगवन् ! एक मंडल से दूसरे मंडल में संक्रमण करता सूर्य कैसे गति करता है ? इस विषय में दो प्रति-पत्तियाँ हैं-(१) वह सूर्य भेदघात से संक्रमण करता है । (२) वह कर्णकला से गमन करता है । भगवंत कहते हैं कि जो भेदघात से संक्रमण बताते हैं उसमें यह दोष है कि भेदघात से संक्रमण करता सूर्य जिस अन्तर से एक मंडल से दूसरे मंडल में गमन करता है वह मार्ग में आगे नहीं जा सकता, दूसरे मंडल में पहुँचने से पहले ही उनका भोगकाल न्यून हो जाता है । जो यह कहते हैं कि सूर्य कर्णकला से संक्रमण करता है वह जिस अन्तर से एक मंडल से दूसरे मंडल में गति करता है तब जितनी कर्णकाल को छोड़ता है उतना मार्ग में आगे जाता है, इस मत में यह विशेषता है कि आगे जाता हुआ सूर्य मंडलकाल को न्यून नहीं करता । एक मंडल से दूसरे मंडल में संक्रमण करता सूर्य कर्ण-कला से गति करता है यह बात नय गति से जानना ।

प्राभृत–२ प्राभृतप्राभृत-३

सूत्र - ३७

हे भगवन् ! कितने क्षेत्र में सूर्य एकएक मुहूर्त्त में गमन करता है ? इस विषय में चार प्रतिपत्तियाँ हैं । (१) सूर्य एक-एक मुहूर्त्त में छ-छ हजार योजन गमन करता है । (२) पाँच-पाँच हजार योजन बताता है । (३) चार-चार हजार योजन कहता है । (४) सूर्य एक-एक मुहूर्त्त में छह या पाँच या चार हजार योजन गमन करता है

जो यह कहते हैं कि एक-एक मुहूर्त्त में सूर्य छ-छ हजार योजन गति करते हैं उनके मतानुसार जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से गमन करता है तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है, उन दिनों में १०८००० योजन प्रमाण तापक्षेत्र होता है, जब वह सूर्य सर्वबाह्य मंडल में गमन करता है तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है और ७२००० योजन का तापक्षेत्र होता है ।

जो सूर्य का गमन पाँच-पाँच हजार योजन का एक मुहूर्त्त में बतलाते हैं वह यह कहते हैं कि सूर्य सर्वाभ्य-न्तर मंडल से उपसंक्रमण करके गति करता है तब रात्रिदिन का प्रमाण पूर्ववत् है, लेकिन तापक्षेत्र ९०००० योजन होता है । जब सर्वबाह्य मंडल में गति करता है तब तापक्षेत्र ६०,००० योजन हो जाता है । जो मतवादी चार-चार हजार योजन का गमनक्षेत्र कहते हैं, वह सर्वाभ्यन्तर मंडल में सूर्य का तापक्षेत्र ७२,००० योजन का कहते हैं और सर्वबाह्य मंडल में ४८,००० योजन का तापक्षेत्र बताते हैं, लेकिन रात्रिदिन का प्रमाण पूर्ववत् ही है ।

जो एक मुहूर्त्त में सूर्य का गमन छह-पाँच या चार हजार योजन बताते हैं, वह यह कहते हैं कि सूर्य उदय और अस्त काल में शीघ्रगतिवाला होता है, तब वह छह-छह हजार योजन एकमुहूर्त्त में गति करता है; फिर वह मध्यम तापक्षेत्र को प्राप्त करते करते मध्यमगतिवाला होता जाता है, तब वह पाँच-पाँच हजार योजन एक मुहूर्त्त में गति करता है, जब पूर्णतया मध्यम तापक्षेत्र को प्राप्त हो जाता है तब वह मंदगतिवाला होकर एक मुहूर्त्त में चार-चार हजार योजन गति करता है । ऐसा कहने का हेतु यह है कि यह जंबूद्वीप चारों ओर से सभी द्वीपसमुद्रों से घीरा हुआ है, जब सर्वाभ्यन्तर मंडल से उपसंक्रमण करके सूर्य गमन करता है, उन दिनों में तापक्षेत्र ९१००० योजन का होता है और सर्वबाह्य मंडल में गमन करता है तब तापक्षेत्र ६१००० योजन का होता है, रात्रि दिन का प्रमाण पूर्ववत् ही होता है ।

भगवंत फरमाते हैं कि सूर्य एक मुहूर्त्त में सातिरेक पाँच-पाँच हजार योजन की गति करता है । जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से संक्रमण करके गति करता है तब पाँच-पाँच हजार योजन एवं २५१ योजन तथा एक योजन का उनतीस षष्ठ्यंश भाग प्रमाण से एकएक मुहूर्त्त में गति करते हैं । उस समय में यहाँ रहे हुए मनुष्यों को ४७२६३ एवं एक योजन के एकवीश एकसट्ठांश भाग प्रमाण से सूर्य दृष्टिगोचर होता है । रात्रिदिन पूर्ववत् जानना । निष्क्रमण करता हुआ सूर्य नए संवत्सर में प्रथम अहोरात्र में अभ्यन्तर मंडल से उपसंक्रमण करके अनन्तर दूसरे मंडल में गति करता है, तब ५२५१ योजन एवं एक योजन के सत्तचत्तालीश षष्ठ्यंश भाग एकएक मुहूर्त्त में गमन करता है, तब ५५२१ योजन एवं एक योजन के सत्तचत्तालीश षष्ठ्यंश भाग एकएक मुहूर्त्त में गमन करता है, उस समय यहाँ रहे हुए मनुष्यों को ४७१७९ योजन एवं एक योजन के सत्तावनषष्ठ्यंश भाग तथा साठ भाग को एकसठ से छेदकर उन्नीस चूर्णिका भाग से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। रात्रिदिन का प्रमाण पूर्ववत् जानना ।

निष्क्रमण करता हुआ वही सूर्य दूसरे अहोरात्र में तीसरे मंडल में उपसंक्रमण करके भ्रमण करता है तब ५२५२ योजन एवं एक योजन के पाँच षष्ठ्यंश भाग एक एक मुहूर्त्त में जाता है, उस समय यहाँ रहे हुए मनुष्यों को ४७०९६ योजन एवं एक योजन के तेईस षष्ठ्यंश भाग तथा साठ के एक भाग को एकसठ से छेदकर दो चूर्णिका भाग से सूर्य दृष्टिगोचर होता है । इसी प्रकार से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य तद्अनन्तर-अनन्तर मंडलों में गति करता है, तब एक योजन के अट्ठारह-अट्ठारह साठ भाग से एकएक मंडल में मुहूर्त्त गति को बढ़ाते बढ़ाते ८४ योजनो में किंचित् न्यून पुरुषछाया की हानि करते-करते सर्वबाह्य मंडल में गति करता है । जब वह सर्वबाह्य मंडल में गमन करता है, तब ५३०५ योजन एवं एक योजन के पन्द्रह षष्ठ्यंश भाग एक एक मुहूर्त्त में गमन करता है, उस समय यहाँ रहे हुए मनुष्यों को ३१८३१ योजन एवं एक योजन के तीस षष्ठ्यंश भाग प्रमाण से सूर्य दृष्टिगोचर होता है । उस समय उत्कृष्ट अट्ठारह

मुहूर्त्त की रात्रि और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है । इस प्रकार पहले छ मास होते हैं, छ मास का पर्यवसान होता है ।

दूसरे छ मास में सूर्य सर्वबाह्य मंडल से सर्व अभ्यन्तर मंडल की तरफ प्रवेश करने का आरंभ करता है । प्रथम अहोरात्र में जब अनन्तर मंडल में प्रवेश करता है, तब ५३०४ योजन एवं एक योजन के सत्तावन षष्ठ्यंश भाग से एकएक मुहूर्त्त में गमन करता है । उस समय यहाँ रहे हुए मनुष्य को ३१९१६ योजन तथा एक योजन के उनचालीश षष्ठ्यंश भाग को तथा साठ को एकसठ भाग से छेदकर साठ चूर्णिका भागों से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। रात्रिदिन पूर्ववत् जानना । इसी क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य अनन्तर-अनन्तर मंडल में उपसंक्रमण करके प्रवेश करता है, तब एक योजन के अट्ठारह-अट्ठारह षष्ठ्यंश भाग एक मंडल में मुहूर्त्त गति से न्यून करते हुए और किंचित् विशेष ८५-८५ योजन की पुरुषछाया को बढ़ाते हुए सर्वाभ्यन्तर मंडल को प्राप्त करते हैं । तब ५२५१ योजन एवं एक योजन के उनतीसषष्ठ्यंश भाग से एकएक मुहूर्त्त में गति करता है; उस समय यहाँ रहे हुए मनुष्यों को ४७२६२ एवं एक योजन के ईक्कीस षष्ठ्यंश भाग से सूर्य दृष्टिगोचर होता है । तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । यह हुए दूसरे छह मास । यह हुआ छह मास का पर्यवसान और यह हुआ आदित्य संवत्सर ।

प्राभृत-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–३

सूत्र - ३८

चंद्र-सूर्य कितने क्षेत्र को अवभासित-उद्योतित-तापित एवं प्रकाशीत करता है ? इस विषय में बारह प्रति-पत्तियाँ हैं । वह इस प्रकार-(१) गमन करते हुए चंद्र-सूर्य एक द्वीप और एक समुद्र को अवभासित यावत् प्रकाशित करते हैं । (२) तीन द्वीप-तीन समुद्र को अवभासित यावत् प्रकाशीत करते हैं । (३) अर्द्ध चतुर्थद्वीप-अर्द्ध चतुर्थ समुद्र को अवभासित आदि करते हैं । (४) सात द्वीप - सात समुद्रों को अवभासित आदि करते हैं । (५) दश द्वीप और दश समुद्र को अवभासित आदि करते हैं । (६) बारह द्वीप-बारह समुद्र को अवभासित आदि करते हैं ।

(७) बयालीस द्वीप-बयालीस समुद्र को अवभासित आदि करते हैं । (८) बहत्तर द्वीप बहत्तर समुद्र को अवभासित आदि करते हैं । (९) १४२-१४२ द्वीप-समुद्रों को अवभासित आदि करते हैं । (१०) १७२-१७२ द्वीप-समुद्रों को अवभासित आदि करते हैं । (११) १०४२-१०४२ द्वीप समुद्र को अवभासित आदि करते हैं । (१२) चंद्र-सूर्य १०७२ -१०७२ द्वीप-समुद्रों को अवभासित यावत् प्रकाशीत करते हैं ।

भगवंत फरमाते हैं कि यह जंबूद्वीप सर्वद्वीप-समुद्रों से घीरा हुआ है । एक जगति से चारों तरफ से परिक्षिप्त हैं । इत्यादिकथन "जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति" सूत्रानुसार यावत् १५६००० नदियों से युक्त है, यहाँ तक कहना । यह जंबूद्वीप पाँच चक्र भागों से संस्थित है । हे भगवन् ! जंबूद्वीप पाँच चक्र भागों से किस प्रकार संस्थित है ? जब दोनों सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से उपसंक्रमण करके गति करते हैं, तब जंबूद्वीप के तीनपंचमांश चक्र भागों को अव-भासित यावत् प्रकाशित करते हैं, एक सूर्य द्वयर्द्ध पंच चक्रवाल भाग को और दूसरा अन्य द्वयर्द्ध चक्रवाल भाग को अवभासीत यावत् प्रकाशित करता है । उस समय परम उत्कर्ष प्राप्त अट्ठारह उत्कृष्ट मुहूर्त्त का दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब दोनों सूर्य सर्वबाह्य मंडल में उपसंक्रमण करके गति करते हैं, तब जंबूद्वीप के दो चक्रवाल भाग को अवभासित यावत् प्रकाशित करते हैं, अर्थात् एक सूर्य एक पंचम भाग को और दूसरा सूर्य दूसरे एकपंचम चक्रवाल भाग को अवभासित यावत् प्रकाशित करता है, उस समय उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है ।

प्राभृत-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–४

सूत्र - ३९

श्वेत की संस्थिति किस प्रकार की है ? श्वेत संस्थिति दो प्रकार की है-चंद्र-सूर्य की संस्थिति और तापक्षेत्र की संस्थिति । चन्द्र-सूर्य की संस्थिति के विषय में यह सोलह प्रतिपत्तियाँ (परमतवादी मत) हैं । -कोई कहता है कि, (१) चन्द्र-सूर्य की संस्थिति समचतुरस्र हैं । (२) विषम चतुरस्र है । (३) समचतुष्कोण है । (४) विषम चतुष्कोण है । (५) समचक्रवाल है । (६) विषम चक्रवाल है । (७) अर्द्धचक्रवाल है । (८) छत्राकार है । (९) गेहा-कार है । (१०) गृहापण संस्थित है । (११) प्रासाद आकार है । (१२) गोपुराकार है । (१३) प्रेक्षागृहाकार है । (१४) वल्लभी संस्थित है । (१५) हर्म्यतल संस्थित है । (१६) सोलहवां मतवादी चन्द्र-सूर्य की संस्थिति वालाग्र-पोतिका आकार की बताते हैं । इसमें जो संस्थिति को समचतुरस्राकार की बताते हैं वह कथन नय द्वारा ज्ञातव्य है, अन्य से नहीं ।

तापक्षेत्र की संस्थिति के सम्बन्ध में भी सोलह प्रतिपत्तियाँ हैं । अन्य मतवादी अपना अपना कथन इस प्रकार से बताते हैं-(१ से ८) तापक्षेत्र संस्थिति गेहाकार यावत् वालाग्रपोतिका आकार की है । (९) जंबूद्वीप की संस्थिति के समान है । (१०) भारत वर्ष की संस्थिति के समान है । (११) उद्यान आकार है । (१२) निर्याण आकार है । (१३) एकतः निषध संस्थान संस्थित है । (१४) उभयतः निषध संस्थान संस्थित है। (१५) श्वेनक पक्षी के आकार की है । (१६) श्वेनक पक्षी के पीठ के आकार की है ।

भगवंत फरमाते हैं कि यह तापक्षेत्र संस्थिति उर्ध्वमुख कलंब के पुष्प के समान आकारवाली है । अंदर से संकुचित-गोल एवं अंक के मुख के समान है और बाहर से विस्तृत-पृथुल एवं स्वस्ति के मुख के समान है । उसके दोनों तरफ दो बाहाएं अवस्थित हैं । वह बाहाएं आयाम से ४५-४५ हजार योजन है । वह बाहाएं सर्वाभ्यन्तर और सर्वबाह्य हैं । इन दोनों बाहा का माप बताते हैं-जो सर्वाभ्यन्तर बाहा है वह मेरु पर्वत के समीप में ९४८६ योजन एवं एक योजन के नव या दस भाग योजन परिक्षेप से कही है । मंदरपर्वत के परिक्षेप को तीन गुना कर के दश से भाग करना, वह भाग परिक्षेप विशेष का प्रमाण है । जो सर्वबाह्य बाहा है वह लवण समुद्र के अन्तमें ९४८६८ योजन एवं एक योजन के 4/10 भाग से परिक्षिप्त हैं । जंबूद्वीप के परिक्षेप को तीन गुना कर के दश से छेद कर के दश भाग घटाने से यह परिक्षेप विशेष कहा जाता है ।

हे भगवन् ! यह तापक्षेत्र आयाम से कितना है ? यह तापक्षेत्र आयाम से ७८३२३ योजन एवं एक योजन के एकतृतीयांश आयाम से कहा है । तब अंधकार संस्थिति कैसे कही है ? यह संस्थिति तापक्षेत्र के समान ही जानना । उसकी सर्वाभ्यन्तर बाहा मंदर पर्वत के निकट ६३२४ योजन एवं एक योजन के छ दशांश भाग प्रमाण परिक्षेप से जानना, यावत् सर्वबाह्य बाहा लवण समुद्र के अन्त में ६३२४५ योजन एवं एक योजन के छ दशांश भाग परिक्षेप से है । जो जंबूद्वीप का परिक्षेप है, उसको दूगुना करके दश से छेद करना फिर दश भाग कम करके यह परिक्षेप होता है । आयाम से ७८३२३ योजन एवं एक योजन का एक तृतीयांश भाग होता है तब परमप्रकर्ष प्राप्त उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त प्रमाण दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ।

जो अभ्यन्तर मंडल की अन्धकार संस्थिति का प्रमाण है, वही बाह्य मंडल की तापक्षेत्र संस्थिति का प्रमाण है और जो अभ्यन्तर मंडल की तापक्षेत्र संस्थिति का प्रमाण है वही बाह्यमंडल की अन्धकार संस्थिति का प्रमाण है यावत् परमप्रकर्ष प्राप्त उत्कृष्टा अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है । उस समय जंबूद्वीप में सूर्य १०० योजन उर्ध्व प्रकाशित करता है, १८०० योजन नीचे की तरफ तथा ४७२६३ योजन एवं एक योजन के इक्किस षष्ठ्यंश तीर्छे भाग को प्रकाशित करता है ।

प्राभृत-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–५

सूत्र - ४०

सूर्य की लेश्या कहाँ प्रतिहत होती है ? इस विषय में बीस प्रतिपत्तियाँ है । (१) मन्दर पर्वत में, (२) मेरु पर्वत में, (३) मनोरम पर्वत में, (४) सुदर्शन पर्वत में, (५) स्वयंप्रभ पर्वत में, (६) गिरिराज पर्वत में, (७) रत्नोच्चय पर्वत में, (८) शिलोच्चय पर्वत में, (९) लोकमध्य पर्वत में, (१०) लोकनाभी पर्वत में, (११) अच्छ पर्वत में, (१२) सूर्यावर्त्त पर्वत में, (१३) सूर्यावरण पर्वत में, (१४) उत्तम पर्वत में, (१५) दिगादि पर्वत में, (१६) अवतंस पर्वत में, (१७) धरणीखील पर्वत में, (१८) धरणीशृंग पर्वत में, (१९) पर्वतेन्द्र पर्वत में, (२०) पर्वतराज पर्वत में सूर्य लेश्या प्रतिहत होती है ।

भगवंत फरमाते हैं कि यह लेश्या मंदर पर्वत यावत् पर्वतराज पर्वत में प्रतिहत होती है । जो पुद्गल सूर्य की लेश्या को स्पर्श करते हैं, वहीं पुद्गल सूर्यलेश्या को प्रतिहत करते हैं । चरमलेश्या अन्तर्गत् पुद्गल भी सूर्य लेश्या को प्रतिहत करते हैं ।

प्राभृत-५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत-६

सूत्र - ४१

सूर्य की प्रकाश संस्थिति किस प्रकार की है ? इस विषय में अन्य मतवादी पच्चीश प्रतिपत्तियाँ हैं, वह इस प्रकार हैं - (१) अनु समय में सूर्य का प्रकाश अन्यत्र उत्पन्न होता है, भिन्नता से विनष्ट होता है, (२) अनुमुहूर्त्त में अन्यत्र उत्पन्न होता है, अन्यत्र नाश होता है, (३) रात्रिदिन में अन्यत्र उत्पन्न होकर अन्यत्र विनाश होता है, (४) अन्य पक्ष में, (५) अन्य मास में, (६) अनुऋतु में, (७) अनुअयन में, (८) अनुसंवत्सर में, (९) अनुयुग में, (१०) अनुशत-वर्ष में, (११) अनुसहस्र वर्ष में, (१२) अनुलक्ष वर्ष में, (१३) अनुपूर्व में, (१४) अनुशतपूर्व में, (१५) अनुसहस्रपूर्व में, (१६) अनुलक्षपूर्व में, (१७) अनुपल्योपम मैं, (१८) अनुशतपल्योपम में, (१९) अनुसहस्रपल्योपम में, (२०) अनुलक्षपल्योपम में, (२१) अनुसागरोपम में, (२२) अनुशत सागरोपम में, (२३) अनुसहस्रसागरोपम में, (२४) अनुलक्षसागरोपम में, (२५) अनुउत्सर्पिणी अवसर्पिणी में-सूर्य का प्रकाश अन्यत्र उत्पन्न होता है, अन्यत्र विनष्ट होता है ।

भगवंत फरमाते हैं कि-त्रीश-त्रीश मुहूर्त्त पर्यन्त सूर्य का प्रकाश अवस्थित रहता है, इसके बाद वह अनव-स्थित हो जाता है । छह मास पर्यन्त सूर्य का प्रकाश न्यून होता है और छह मास पर्यन्त बढ़ता रहता है । क्योंकि जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से निष्क्रमण करके गमन करता है, उस समय उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । निष्क्रम्यमान सूर्य नए संवत्सर को प्राप्त करके प्रथम अहोरात्रि में अभ्यन्तर मंडल से उपसंक्रमण करके जब गमन करता है तब एक अहोरात्र में दिवस क्षेत्र के प्रकाश को एक भाग न्यून करता है और रात्रि में एक भाग की वृद्धि होती है, मंडल का १८३० भाग से छेद करता है । उस समय दो-एकसट्ठांश भाग दिन की हानि और रात्रि की वृद्धि होती है । वही सूर्य जब दूसरे अहोरात्र में निष्क्रमण करके तीसरे मंडल में गति करता है तब दो अहोरात्र में दो भाग प्रमाण दिवस क्षेत्र की हानि और रात्रि क्षेत्र की वृद्धि होती है । मंडल का १८३० भाग से छेद होता है । चार एकसट्ठांश मुहूर्त्त प्रमाण दिन की हानि और रात्रि की वृद्धि होती है ।

निश्चय से इसी अभिलाप से निष्क्रम्यमान सूर्य अनन्तर अनन्तर मंडलों में गमन करता हुआ, एक एक अहोरात्र में एक एक भाग प्रमाण दिवस क्षेत्र को न्यून करता और रात्रिक्षेत्र को बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मंडल में उपसंक्रमण करके गमन करता है । १८३ अहोरात्र में १८३ भाग प्रमाण दिवस क्षेत्र को कम करता है और उतना ही रात्रि क्षेत्र में वृद्धि करता है । उस समय परमप्रकर्ष प्राप्त अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है । यह हुए प्रथम छ मास ।

दूसरे छ मास का आरंभ होता है तब सूर्य सर्वबाह्य मंडल से सर्वाभ्यन्तर मंडल में प्रवेश करने का आरम्भ करता है । प्रवेश करता हुआ सूर्य जब अनन्तर मंडल में उपसंक्रमण करके गमन करता है तब एक अहोरात्र में अपने प्रकाश से रात्रि क्षेत्र का एक भाग कम करता है और दिवस क्षेत्र के एक भाग की वृद्धि करता है । १८३० भाग से छेद करता है । दो एकसट्ठांश मुहूर्त्त से रात्रि की हानि और दिन की वृद्धि होती है । इसी प्रकार से पूर्वोक्त पद्धति से उपसंक्रमण करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मंडल में पहुँचता है तब १८३० भाग से छेद कर और एक एक महोरात्र में दिवस क्षेत्र की वृद्धि और रात्रिक्षेत्र की हानि करता हुआ १८३ अहोरात्र होते हैं । सर्वाभ्यन्तर मंडल में गमन करता है तब उत्कृष्ट मुहूर्त्त का दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । यह हुए दूसरे छ मास यावत् आदित्य संवत्सर का पर्यवसान ।

प्राभृत-६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–७

सूत्र - ४२

सूर्य का वरण कौन करता है ? इस विषय में बीस प्रतिपत्तियाँ हैं । एक कहता है मंदर पर्वत सूर्य का वरण करता है, दूसरा कहता है कि मेरु पर्वत वरण करता है यावत् बीसवां कहता है कि पर्वतराज पर्वत सूर्य का वरण करता है । (प्राभृत-५-के समान समस्त कथन समझ लेना ।) भगवंत फरमाते हैं कि मंदर पर्वत से लेकर पर्वतराज पर्वत सूर्य का वरण करता है, जो पुद्गल सूर्य की लेश्या को स्पर्श करते हैं वे सभी सूर्य का वरण करते हैं । अदृष्ट एवं चरमलेश्यान्तर्गत् पुद्गल भी सूर्य का वरण करते हैं ।

प्राभृत-७-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–८

सूत्र - ४३

सूर्य की उदय संस्थिति कैसी है ? इस विषय में तीन प्रतिपत्तियाँ हैं । एक परमतवादी कहता है कि जब जंबूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी अट्ठारह मुहूर्त्त प्रमाण दिन होता है । जब उत्तरार्द्ध में अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन होता है । जब जंबूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में सत्तरह मुहूर्त्त प्रमाण दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी सत्तरह मुहूर्त्त का दिन होता है । इसी तरह उत्तरार्द्ध में सत्तरह मुहूर्त्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी समझना । इसी प्रकार से एक-एक मुहूर्त्त की हानि करते-करते सोलह-पन्द्रह यावत् बारह मुहूर्त्त प्रमाण जानना । जब जंबूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी बारह मुहूर्त्त का दिन होता है और उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी बारह मुहूर्त्त का दिन होता है । उस समय जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के पूर्व और पश्चिम में हंमेशा पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन और पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि अवस्थित रहती है ।

कोई दूसरा कहता है कि जंबूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में जब अट्ठारह मुहूर्त्तान्तर दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी अट्ठारहमुहूर्त्तान्तर दिन होता है और उत्तरार्द्ध में मुहूर्त्तान्तर दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में भी अट्ठारह मुहूर्त्तान्तर का दिन होता है । इसी क्रम से इसी अभिलाप से सत्तरह-सोलह यावत् बारह मुहूर्त्तान्तर प्रमाण को पूर्ववत् समझ लेना। इन सब मुहूर्त्त प्रमाण काल में जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के पूर्व और पश्चिम में सदा पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन नहीं होता और सदा पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि भी नहीं होती, लेकिन वहाँ रात्रिदिन का प्रमाण अनवस्थित रहता है ।

कोई मतवादी यह भी कहता है कि जब जंबूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है और उत्तरार्द्ध अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब दक्षिणार्द्ध में अट्ठारह मुहूर्त्तान्तर का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बारह मुहूर्त्त प्रमाण रात्रि होती है, उत्तरार्द्ध में अट्ठारह मुहूर्त्तान्तर दिन होता है तब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त्त प्रमाण रात्रि होती है । इसी प्रकार इसी अभिलाप से बारह मुहूर्त्त तक का कथन कर लेना यावत् जब दक्षिणार्द्ध में बारह मुहूर्त्तान्तर प्रमाण दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में बार मुहूर्त्त प्रमाण की रात्रि होती है एवं मेरुपर्वत के पूर्व-पश्चिम में पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि या दिन कभी नहीं होता, वहाँ रात्रिदिन अवस्थित हैं ।

भगवंत फरमाते हैं कि जंबूद्वीप में इशान कोने में सूर्य उदित होता है वहाँ से अग्निकोने में जाता है, अग्नि कोने में उदित होकर नैऋत्य कोने में जाता है, नैऋत्य कोने में उदित होकर वायव्य कोने में जाता है और वायव्य कोने में उदित होकर इशान कोने में जाता है । जब जंबूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है और जब उत्तरार्द्ध में दिन होता है तब मेरुपर्वत के पूर्व-पश्चिम में रात्रि होती है । जब दक्षिणार्द्ध में अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन होता है और उत्तरार्द्ध में अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम में जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । इसी तरह जब मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम में जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । इसी तरह जब मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम में उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त का दिन होता है, तब मेरुपर्वत के उत्तर-दक्षिण में जघन्या बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । इसी क्रम से इसी प्रकार आलापक से समझ लेना चाहिए की जब अट्ठारह मुहूर्त्तान्तर दिवस होता है तब सातिरेक बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है, सत्तरह मुहूर्त्त का दिवस होता है तब तेरह मुहूर्त्त की रात्रि होती है... यावत्... जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ।

जब इस जंबूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में वर्षाकाल का प्रथम समय होता है तब उत्तरार्द्ध में भी वर्षाकाल का प्रथम समय होता है, जब उत्तरार्द्ध में वर्षाकाल का प्रथम समय होता है तब मेरुपर्वत के पूर्व-पश्चिम में अनन्तर पुरस्कृतकाल में वर्षाकाल का आरम्भ होता है; जब मेरुपर्वत के पूर्व-पश्चिम में वर्षाकाल का प्रथम समय होता है तब मेरुपर्वत के दक्षिण-उत्तर में अनन्तर पश्चातकृत् काल में वर्षाकाल का प्रथम समय समाप्त होता है । समय के कथनानुसार

आवलिका, आनप्राण, स्तोक यावत् ऋतु के दश आलापक समझ लेना । वर्षाऋतु के कथनानुसार हेमन्त और ग्रीष्मऋतु का कथन भी समझ लेना । जब जंबूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में प्रथम अयन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अयन होता है और उत्तरार्द्ध में प्रथम अयन होता है तब मेरुपर्वत के पूर्व-पश्चिम में अनन्तर पुरस्कृत् काल में पहला अयन प्राप्त होता है । जब मेरुपर्वत के पूर्व-पश्चिम में प्रथम अयन होता है तब उत्तर-दक्षिण में अनन्तर पश्चातकृत् कालसमय में प्रथम अयन समाप्त होता है ।

अयन के कथनानुसार संवत्सर, युग, शतवर्ष यावत् सागरोपम काल में भी समझ लेना । जब जंबूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में उत्सर्पिणी होती है तब उत्तरार्द्ध में भी उत्सर्पिणी होती है, जब उत्तरार्द्ध में उत्सर्पिणी होती है तब मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम में उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी नहीं होती है क्योंकि-वहाँ अवस्थित काल होता है । इसी तरह अवसर्पिणी भी जान लेना । लवणसमुद्र - धातकीखण्डद्वीप-कालोदसमुद्र एवं अभ्यन्तर पुष्करवरार्द्धद्वीप इन सबका समस्त कथन जंबूद्वीप के समान ही समझ लेना, विशेष यह कि जंबूद्वीप के स्थान पर स्व-स्व द्वीप समुद्र को कहना ।

प्राभृत-८-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत-९

सूत्र - ४४

कितने प्रमाणयुक्त पुरुषछाया से सूर्य परिभ्रमण करता है ? इस विषय में तीन प्रतिपत्तियाँ हैं । एक मत-वादी यह कहता है कि जो पुद्गल सूर्य की लेश्या का स्पर्श करता है वही पुद्गल उससे संतापित होते हैं । संतप्य-मान पुद्गल तदनन्तर बाह्य पुद्गलों को संतापित करता है । यही वह समित तापक्षेत्र है । दूसरा कोई कहता है कि जो पुद्गल सूर्य की लेश्या का स्पर्श करता है, वह पुद्गल संतापित नहीं होते, वह असंतप्यमान पुद्गल से अनन्तर पुद्गल भी संतापित नहीं होते, यहीं है वह समित तापक्षेत्र । तीसरा कोई यह कहता है कि जो पुद्गल सूर्य की लेश्या का स्पर्श करता है, उनमें से कितनेक पुद्गल संतप्त होते हैं और कितनेक नहीं होते । जो संतप्त हुए हैं वे पुद्गल अनन्तर बाह्य पुद्गलोंमें से किसीको संतापित करते हैं और किसीको नहीं करते, यहीं है वो समित ताप-क्षेत्र

भगवंत फरमाते हैं कि-जो ये चन्द्र-सूर्य के विमानों से लेश्या नीकलती है वह बाहर के यथोचित आकाश-क्षेत्र को प्रकाशित करती है, उन लेश्या के पीछे अन्य छिन्न लेश्याएं होती है, वह छिन्नलेश्याए बाह्य पुद्गलों को संतापित करती है, यहीं है उसका समित अर्थात् उत्पन्न हुआ तापक्षेत्र ।

सूत्र - ४५

कितने प्रमाणवाली पौरुषी छाया को सूर्य निवर्तित करता है ? इस विषय में पच्चीस प्रतिपत्तियाँ हैं-जो छठ्ठे प्राभृत के समान समझ लेना । जैसे की कोई कहता है कि अनुसमय में सूर्य पौरुषी छाया को उत्पन्न करता है, इत्यादि । भगवंत फरमाते हैं कि सूर्य से उत्पन्न लेश्या के सम्बन्ध में यथार्थतया जानकर मैं छायोद्देश कहता हूँ । इस विषय में दो प्रतिपत्तियाँ हैं । एक कहता है कि-ऐसा भी दिन होता है जिसमें सूर्य चार पुरुष प्रमाण छाया को उत्पन्न करता है और ऐसा भी दिन होता है जिसमें दो पुरुष प्रमाण छाया को उत्पन्न करता है । दूसरा कहता है कि दो प्रकार दिन होते हैं - एक जिसमें सूर्य दो पुरुष प्रमाण छाया उत्पन्न करता है, दूसरा-जिसमें पौरुषी छाया उत्पन्न ही नहीं होती ।

जो यह कहते हैं कि सूर्य चार पुरुषछाया भी उत्पन्न करता है और दो पुरुषछाया भी - उस मतानुसार - सूर्य जब सर्वाभ्यन्तर मंडल को संक्रमण करके गमन करता है तब उत्कृष्ट अट्ठारह मुहूर्त्त प्रमाण दिन और जघन्या बारह मुहूर्त्त प्रमाण रात्रि होती है, उस दिन सूर्य चार पौरुषीछाया उत्पन्न करता है । उदय और अस्तकाल में लेश्या की वृद्धि करके वहीं सूर्य जब सर्वबाह्य मंडल में गमन करता है, उत्कृष्टा अट्ठारह मुहूर्त्त की रात्रि और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब दो पौरुषीछाया को सूर्य उत्पन्न करता है । जो यह कहते हैं कि सूर्य चार पौरुषी छाया उत्पन्न करता है और किंचित् भी नहीं उत्पन्न करता - उस मतानुसार - सर्वाभ्यन्तर मंडल को संक्रमण करके सूर्य गमन करता है तब रात्रि-दिन पूर्ववत् ही होते हैं, लेकिन उदय और अस्तकाल में लेश्या की अभिवृद्धि करके दो पौरुषीछाया को उत्पन्न करते हैं, जब वह सर्वबाह्य मंडल में गमन करता है तब लेश्या की अभिवृद्धि किए बिना, उदय और अस्तकाल में किंचित् भी पौरुषी छाया को उत्पन्न नहीं करता ।

हे भगवन् ! फिर सूर्य कितने प्रमाण की पौरुषी छाया को निवर्तित करता है ? इस विषय में ९६ प्रति-पत्तियाँ हैं । एक कहता है कि ऐसा देश है जहाँ सूर्य एक पौरुषी छाया को निवर्तित करता है । दूसरा कहता है कि सूर्य दो पौरुषी छाया को निवर्तित करता है । ...यावत्... ९६ पौरुषी छाया को निवर्तित करता है । इनमें जो एक पौरुषी छाया के निवर्तन का कथन करते हैं, उस मतानुसार-सूर्य के सबसे नीचे के स्थान से सूर्य के प्रतिघात से बाहर नीकली हुई लेश्या से ताड़ित हुई लेश्या, इस रत्नप्रभापृथ्वी के समभूतल भूभाग से जितने प्रमाणवाले प्रदेश में सूर्य ऊर्ध्व व्यवस्थित होता है, इतने प्रमाण से सम मार्ग से एक संख्या प्रमाणवाले छायानुमान से एक पौरुषी छाया को निवर्तित करता है । इसी प्रकार से इसी अभिलाप से ९६ प्रतिपत्तियाँ समझ लेना ।

भगवान् फिर फरमाते हैं कि-वह सूर्य उनसठ पौरुषी छाया को उत्पन्न करता है । अर्ध पौरुषी छाया दिवस का कितना भाग व्यतीत होने के बाद उत्पन्न होती है ? दिन का तीसरा भाग व्यतीत होने के बाद उत्पन्न होती है । पुरुष प्रमाण छाया दिन के चतुर्थ भाग व्यतीत होनी के बाद उत्पन्न होती है, द्वयर्द्धपुरुष प्रमाण छाया दिन का पंचमांश भाग

व्यतीत होते उत्पन्न होती हैं इस प्रकार यावत् पच्चीस प्रकार की छाया का वर्णन है । वह इस प्रकार है-खंभछाया, रज्जुछाया, प्राकारछाया, प्रासादछाया, उद्गमछाया, उच्चत्वछाया, अनुलोमछाया, प्रतिलोमछाया, आरंभिता, उवहिता, समा, प्रतिहता, खीलच्छाया, पक्षच्छाया, पूर्वउदग्रा, पृष्ठउदग्रा, पूर्वकंठभागोपगता, पश्चिमकंठ-भागोपगता, छायानुवादिनी, कंठानुवादिनी, छाया छायच्छाया, छायाविकंपा, वेहासकडच्छाया और गोलच्छाया । गोलच्छाया के आठ भेद हैं-गोलच्छाया, अपार्धगोलच्छाया, गोलगोलछाया, अपार्धगोलछाया, गोलावलिछाया, अपार्धगोलावलिछाया, गोलपुंज-छाया और अपार्धगोलपुंज छाया ।

प्राभृत-९-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–१०

प्राभृत-प्राभृत–१

सूत्र - ४६

योग अर्थात् नक्षत्रों की युति के सम्बन्ध में वस्तु का आवलिकानिपात कैसे होता है ? इस विषय में पाँच प्रतिपत्तियाँ हैं - एक कहता है-नक्षत्र कृतिका से भरणी तक है । दूसरा कहता है-मघा से अश्लेषा पर्यन्त नक्षत्र हैं । तीसरा कहता है-धनिष्ठा से श्रवण तक सब नक्षत्र हैं । चौथा - अश्विनी से रेवती तक नक्षत्र आवलिका है । पाँचवा - नक्षत्र भरणी से अश्विनी तक है । भगवंत फरमाते हैं कि यह आवलिका अभिजीत से उत्तराषाढ़ा है ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–२

सूत्र - ४७

नक्षत्र का मुहूर्त्त प्रमाण किस तरह है ? भगवंत कहते हैं कि-इन अट्ठाईस नक्षत्रों में ऐसे भी नक्षत्र हैं, जो नवमुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के सत्ताईस सडसट्ठांश भाग पर्यन्त चन्द्रमा के साथ योग करते हैं । फिर पन्द्रह मुहूर्त्त से - तीस मुहूर्त्त से-४५ मुहूर्त्त से चन्द्रमा से योग करनेवाले विभिन्न नक्षत्र भी हैं, वह इस प्रकार हैं-नवमुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के सत्ताईस सडसट्ठांश भाग से चन्द्रमा के साथ योग करनेवाला एक अभिजित नक्षत्र है; पन्द्रह मुहूर्त्त से चन्द्रमा के साथ योग करनेवाले नक्षत्र छह हैं-शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती और ज्येष्ठा; तीस मुहूर्त्त से चन्द्रमा के साथ योग करनेवाले पन्द्रह नक्षत्र हैं-श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, कृतिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढ़ा; ४५ मुहूर्त्त से चन्द्रमा के साथ योग करनेवाले नक्षत्र छह हैं-उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढा ।

सूत्र - ४८

इन अट्ठावीश नक्षत्रोंमें सूर्य के साथ योग करनेवाले नक्षत्र भी हैं । एक नक्षत्र ऐसा है जो सूर्य के साथ चार अहोरात्र एवं छ मुहूर्त्त तक योग करता है - अभिजित; छ नक्षत्र ऐसे हैं जो सूर्य के साथ छ अहोरात्र एवं २१ मुहूर्त्त पर्यन्त योग करते हैं-शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा, १५ नक्षत्र ऐसे हैं जो सूर्य के साथ १३ अहोरात्र एवं १२ मुहूर्त्त पर्यन्त योग करते हैं-श्रवण, घनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, कृतिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढा; छह नक्षत्र ऐसे हैं जो सूर्य के साथ २० अहोरात्र एवं तीन मुहूर्त्त तक योग करते हैं-उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढा ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–३

सूत्र - ४९

हे भगवंत! अहोरात्र भाग सम्बन्धी नक्षत्र कितने हैं ? इन २८ नक्षत्रों में ६ नक्षत्र ऐसे हैं जो पूर्व-भागा तथा समक्षेत्र कहलाते हैं, वे ३० मुहूर्त्तवाले होते हैं-पूर्वोप्रोष्ठपदा, कृतिका, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, मूल और पूर्वाषाढा, दश नक्षत्र ऐसे हैं जो पश्चातभागा तथा समक्षेत्र कहलाते हैं, वे भी तीस मुहूर्त्तवाले हैं-अभिजित्, श्रवण, घनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, मृगशिर, पुष्य, हस्त, चित्रा और अनुराधा, ६ नक्षत्र नक्तंभागा अर्थात् रात्रिगत तथा अर्द्धक्षेत्र वाले हैं, वे १५ मुहूर्त्त वाले होते हैं-शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा, छह नक्षत्र उभयं-भागा अर्थात् दोढ़ क्षेत्र कहलाते हैं, वे ४५ मुहूर्त्तवाले होते हैं-उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढ़ा ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–४

सूत्र - ५०

नक्षत्रों के चंद्र के साथ योग का आदि कैसे प्रतिपादित किया है ? अभिजीत् और श्रवण ये दो नक्षत्र पश्चात् भागा समक्षेत्रा है, वे चन्द्रमा के साथ सातिरेक ऊनचालीश मुहूर्त्त योग करके रहते हैं अर्थात् एक रात्रि और सातिरेक एक दिन तक चन्द्र के साथ व्याप्त रह कर अनुपरिवर्तन करते हैं और शाम को चंद्र धनिष्ठा के साथ योग करता है ।

धनिष्ठा नक्षत्र पश्चात् भाग में चंद्र के साथ योग करता है वह तीस मुहूर्त्त पर्यन्त अर्थात् एक रात्रि और बाद में एक दिन तक चन्द्रमा के साथ योग करके अनुपरिवर्तित होता है तथा शाम को शतभिषा के साथ चन्द्र को समर्पित करता है । शतभिषा नक्षत्र रात्रिगत तथा अर्द्धक्षेत्र होता है वह पन्द्रह मुहूर्त्त तक अर्थात् एक रात्रि चन्द्र के साथ योग करके रहता है और सुबह में पूर्व प्रौष्ठपदा को चंद्र से समर्पित करके अनुपरिवर्तन करता है ।

पूर्वप्रौष्ठपदा नक्षत्र पूर्वभाग-समक्षेत्र और ३० मुहूर्त्त का होता है, वह एक दिन और एक रात्रि चन्द्र के साथ योग करके प्रातः उत्तराप्रौष्ठप्रदा को चन्द्र से समर्पित करके अनुपरिवर्तन करता है । उत्तराप्रौष्ठपदा नक्षत्र उभय-भागा-देढ़ क्षेत्र और ४५ मुहूर्त्त का होता है, प्रातःकाल में वह चन्द्रमा के साथ योग करता है, एक दिन-एक रात और दूसरा दिन चन्द्रमा के साथ व्याप्त रहकर शाम को रेवती नक्षत्र के साथ चन्द्र को समर्पित करके अनुपरिवर्तित होता है । रेवतीनक्षत्र पश्चात्भागा-समक्षेत्र और ३० मुहूर्त्तप्रमाण होता है, शाम को चन्द्र के साथ योग करके एक रात और एक दिन तक साथ रहकर, शाम को अश्विनी नक्षत्र के साथ चन्द्र को समर्पण करके अनुपरिवर्तित होता है । अश्विनी नक्षत्र भी पश्चात्भागा-समक्षेत्र और ३० मुहूर्त्तवाला है, शाम को चन्द्रमा के साथ योग करके एक रात्रि और दूसरे दिन तक व्याप्त रहकर, चन्द्र को भरणी नक्षत्र से समर्पित करके अनुपरिवर्तन करता है ।

भरणी नक्षत्र रात्रिभागा-अर्द्धक्षेत्र और पन्द्रह मुहूर्त्त का है, वह शाम को चन्द्रमा से योग करके एक रात्रि तक साथ रहता है, कृतिका नक्षत्र पूर्वभागा-समक्षेत्र और तीस मुहूर्त्त का है, वह प्रातःकाल में चन्द्र के साथ योग करके एक दिन और एक रात्रि तक साथ रहता है, प्रातःकाल में रोहिणी नक्षत्र को चंद्र से समर्पित करता है । रोहिणी को उत्तराभाद्रपद के समान, मृगशिर को घनिष्ठा के समान, आर्द्रा को शतभिषा के समान, पुनर्वसु को उत्तराभाद्रपद के समान, पुष्य को घनिष्ठा के समान, अश्लेषा को शतभिषा के समान, मघा को पूर्वा फाल्गुनी के समान, उत्तरा फाल्गुनी को उत्तराभाद्रपद के समान, अनुराधा को ज्येष्ठा के समान, मूल और पूर्वाषाढ़ा को पूर्वा-भाद्रपद समान, उत्तराषाढ़ा को उत्तराभाद्रपद के समान इत्यादि समझ लेना ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–५

सूत्र - ५१

कुल आदि नक्षत्र किस प्रकार कहे हैं ? बारह नक्षत्र कुल संज्ञक हैं-घनिष्ठा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, कृतिका, मृगशीर्ष, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल और उत्तराषाढा । बारह नक्षत्र उपकुल संज्ञक कहे हैं-फाल्गुनी, श्रवण, पूर्वाभाद्रपदा, रेवती, भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, अश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा और पूर्वाषाढ़ा । चार नक्षत्र कुलोपकुल संज्ञक हैं-अभिजीत, शतभिषा, आर्द्रा और अनुराधा ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–६

सूत्र - ५२

हे भगवंत् ! पूर्णिमा कौन सी है ? १२ पूर्णिमा और १२ अमावास्या है । १२ पूर्णिमा इस प्रकार हैं-श्राविष्ठी, प्रौष्ठपदी, आसोजी, कार्तिकी, मृगशिर्षी, पौषी, माघी, फाल्गुनी, चैत्री, वैशाखी, ज्येष्ठामूली, आषाढ़ी । कौनसी पूनम किन नक्षत्रों से योग करती है बताते हैं-श्राविष्ठी पूर्णिमा-अभिजीत्, श्रवण, घनिष्ठा से, प्रौष्ठपदी पूर्णिमा-शतभिषा, पूर्वाप्रौष्ठपदा और उत्तराप्रौष्ठपदा से, आसोयुजीपूर्णिमा-रेवती और अश्विनी से, कार्तिकीपूर्णिमा-भरणी और कृतिका से, मृगशिर्षीपूर्णिमा-रोहिणी, मृगशीर्ष से, पौषीपूर्णिमा-आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य से, माघीपूर्णिमा-अश्लेषा, मघा से, फाल्गुनी पूर्णिमा-पूर्वा, उत्तराफाल्गुनी से, चैत्री पूर्णिमा-हस्त, चित्रा से, वैशाखीपूर्णिमा-स्वाति, विशाखा से, ज्येष्ठामूली पूर्णिमा-अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल से और अषाढ़ी पूर्णिमा-पूर्वा तथा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से योग करती है

सूत्र - ५३

श्राविष्ठा पूर्णिमा क्या कुल-उपकुल या कुलोपकुल नक्षत्र से योग करती है ? वह तीनों का योग करती है-कुल का योग करत हुए वह घनिष्ठा नक्षत्र का योग करती है, उपकुल से श्रवण नक्षत्र का और कुलोपकुल से अभिजीत् नक्षत्र का योग करती है । इसी तरह से आगे-आगे की पूर्णिमा के सम्बन्ध में समझना चाहिए-जैसे कि प्रौष्ठपदी पूर्णिमा

योग करते हुए कुल से उत्तराप्रौष्ठपदा से, उपकुल से पूर्वा प्रौष्ठपदा से और कुलोपकुल से शतभिषा नक्षत्र से योग करती है । आसोयुजी पूर्णिमा योग करते हुए कुल से अश्विनी नक्षत्र से और उपकुल से रेवती नक्षत्र से योग करती है, लेकिन उनको कुलोपकुल का योग नहीं होता । पौषी और ज्येष्ठामूली पूर्णिमा में कुलोपकुल योग होता है, शेष सभी पूर्णिमाओं में कुलोपकुल नक्षत्र का योग नहीं बनता ।

श्राविष्ठी अमावास्या कितने नक्षत्र से योग करती है ? वह अश्लेषा और मघा दो नक्षत्रों से योग करती हैं । इसी तरह प्रौष्ठपदी-पूर्वा तथा उत्तरा फाल्गुनी से, आसोयुजी-हस्त तथा चित्रा से, कार्तिकी-स्वाति तथा विशाखा से, मृगशिरा-अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल से, पौषी-पूर्वा और उत्तराषाढ़ा से, माघी-अभिजीत्, श्रवण और घनिष्ठा से, फाल्गुनी-शतभिषा और पूर्वप्रौष्ठपदा से, चैत्री-उत्तराप्रौष्ठपदा, रेवती और अश्विनी से, वैशाखी-भरणी और कृतिका से, ज्येष्ठामूली-मृगशिर और रोहिणी से, आषाढ़ा अमावास्या आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य से योग करती है । श्राविष्ठी अमावास्या कुल एवं उपकुल नक्षत्रों से योग करती है, कुलोपकुल से नहीं, कुल में मघा नक्षत्र से और उपकुल में अश्लेषा नक्षत्र से योग करती है । मृगशिरी, माघी, फाल्गुनी और आषाढ़ी अमावास्या को कुलादि तीनों नक्षत्रों का योग होता है, शेष अमावास्या को कुलोपकुल नक्षत्रों का योग नहीं होता ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–७

सूत्र - ५४

हे भगवंत ! पूर्णिमा-अमावास्या का सन्निपात किस प्रकार का है ? जब श्राविष्ठापूर्णिमा होती है तब अमा-वास्या मघानक्षत्र युक्त होती है, जब मघायुक्त पूर्णिमा होती है तब अमावास्या घनिष्ठायुक्त होती है इसी तरह प्रौष्ठ-पदायुक्त पूर्णिमा के बाद अमावास्या फाल्गुनी, फाल्गुनयुक्त पूर्णिमा के बाद प्रौष्ठपदा अमावास्या, अश्विनीयुक्त पूनम के बाद चित्रायुक्त अमावास्या; कृतिकायुक्त पूर्णिमा के बाद विशाखायुक्त अमावास्या, मृगशिर्षयुक्त पूनम के बाद ज्येष्ठामूली अमावास्या, पुष्ययुक्त पूर्णिमा के बाद आषाढ़ा अमावास्या इत्यादि परस्पर समझ लेना ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–८

सूत्र - ५५

हे भगवंत ! नक्षत्र संस्थिति किस प्रकार की है ? इन अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजीत नक्षत्र का आकार गोशीर्ष की पंक्ति समान है; श्रवण आकार का, घनिष्ठा-शकुनीपलीनक आकार का, शतभिषा-पुष्पोचार आकार का, पूर्वा और उत्तरा प्रौष्ठपदा-अर्द्धवापी आकार का, रेवती-नौका आकार का, अश्विनी अश्व के स्कन्ध आकार का, भरणी-भग आकार का, कृतिका-अस्त्रेवकी धार के आकार का, रोहिणी-गाड़ा की उंध के आकार का, मृगशीर्ष-मस्तक की पंक्ति आकार का, आर्द्रा-रुधिरबिन्दु आकार का, पुनर्वसु-त्राजवा आकार का, पुष्य-वर्धमानक आकार का, अश्लेषा-पताका आकार का, मघा-प्राकार के आकार का, पूर्वा और उत्तरा फाल्गुनी-अर्द्धपलंग आकार का, हस्त-हाथ के आकार का, चित्रा-प्रसन्न मुख समान, स्वाति-खीला समान, विशाखा-दामनी आकार का, अनुराधा-एकावलि हार समान, ज्येष्ठा-गजदन्त आकार का, मूल-वींछी की पूँछ के समान, पूर्वाषाढ़ा-हस्ति-विक्रम आकार का और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र सिंहनिषद्या आकार से संस्थित होता है ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–९

सूत्र - ५६

ताराओं का प्रमाण किस तरह का है ? इस अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजीत नक्षत्र के तीन तारे हैं । श्रवण नक्षत्र के तीन, घनिष्ठा के पाँच, शतभिषा के सौ, पूर्वा-उत्तरा भाद्रपद के दो, रेवती के बतीस, अश्विनी के तीन, भरणी के तीन, कृतिका के छ, रोहिणी के पाँच, मृगशिर्ष के तीन, आर्द्रा का एक, पुनर्वसु के पाँच, पुष्य के तीन, अश्लेषा के छह, मघा के सात, पूर्वा-उत्तरा फाल्गुनी के दो, हस्त के पाँच, चित्रा का एक, स्वाति का एक, विशाखा के पाँच, अनुराधा के चार, ज्येष्ठा के तीन, मूल का एक और पूर्वा तथा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चार-चार तारा होते हैं।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–१०

सूत्र - ५७

नक्षत्ररूप नेता किस प्रकार से कहे हैं ? वर्षा के प्रथम याने श्रावण मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ? चार-उत्तराषाढ़ा, अभिजीत, श्रवण और घनिष्ठा । उत्तराषाढ़ा चौदह अहोरात्र से, अभिजीत सात अहोरात्र से, श्रवण आठ और घनिष्ठा एक अहोरात्र से स्वयं अस्त होकर श्रावण मास को पूर्ण करते हैं । श्रावण मास में चार अंगुल पौरुषी छाया से सूर्य वापस लौटता है, उसके अन्तिम दिनों में दो पाद और चार अंगुल पौरुषी होती है ।

इसी प्रकार भाद्रपदमास को घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा, उत्तराभाद्रपद समाप्त करते हैं, इन नक्षत्र के क्रमशः अहोरात्र चौद, सात, आठ और एक हैं, भाद्रपदमास की पौरुषी छाया आठ अंगुल और चरिमदिन की दो पाद, आठ अंगुल । आसोमास को उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी नक्षत्र क्रमशः चौदह, पन्द्रह और एक अहोरात्र से पूर्ण करते हैं, पौरुषी छाया प्रमाण बारह अंगुल और अन्तिमदिन का तीन पाद । कार्तिक मास को अश्विनी, भरणी और कृतिका क्रमशः चौद, पन्द्रह और एक अहोरात्र से पूर्ण करते हैं, पौरुषी छाया प्रमाण सोलह अंगुल और अन्तिम दिन का तीन पाद चार अंगुल । हेमन्त के प्रथम याने मार्गशिर्ष मास को कृतिका, रोहिणी और संस्थान (मृगशीर्ष) नक्षत्र क्रमशः चौदह, पन्द्रह और एक अहोरात्र से स्वयं अस्त होकर पूर्ण करते हैं, मागशीर्ष मास की पौरुषी छाया प्रमाण त्रिपाद एवं आठ अंगुल हैं । पौषमास को मृगशिर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य क्रमशः, चौद, सात, आठ, एक अहोरात्र से पूर्ण करते हैं, पौरुषी छाया प्रमाण २४ अंगुल और अन्तिम दिन का चारपाद माघ मास को पुष्य, आश्लेषा और मघा नक्षत्र क्रमशः चौदह, पन्द्रह और एक अहोरात्र से पूर्ण करते हैं, पौरुषी छाया प्रमाण बीस अंगुल और अन्तिम दिन का त्रिपाद-आठ अंगुल । फाल्गुन को मघा, पूर्वा और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र क्रमशः चौदह, पन्द्रह और एक अहोरात्र से पूर्ण करते हैं, पौरुषी छाया प्रमाण सोल अंगुल और अन्तिम दिन का त्रिपाद एवं चार अंगुल ।

ग्रीष्म के प्रथम याने चैत्र मास को उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा नक्षत्र क्रमशः चौदह, पन्द्रह और एक अहोरात्र से स्वयं अस्त होकर पूर्ण करते हैं, चैत्र मास की पौरुषी छाया का प्रमाण बारह अंगुल का है और उसके अन्तिम दिन में त्रिपाद प्रमाण पौरुषी होती है । वैशाख मास को चित्रा, स्वाति और विशाखा नक्षत्र चौदह, पन्द्रह और एक अहोरात्र से पूर्ण करते हैं, पौरुषी छाया प्रमाण आठ अंगुल और अन्तिम दिन का दो पाद एवं आठ अंगुल। ज्येष्ठ मास को विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र क्रमशः चौदह, सात, आठ और एक अहोरात्र से पूर्ण करते हैं, पौरुषी छाया प्रमाण चार अंगुल और अन्तिम दिने द्विपाद चार अंगुल पौरुषी । अषाढ़ मास को मूल, पूर्वा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र चौदह, पन्द्रह और एक अहोरात्र से पूर्ण करते हैं, पौरुषी छाया प्रमाण वृत्ताकार, समचतुरस्र, न्यग्रोध परिमंडलाकार हैं और अन्तिम दिन को द्विपाद पौरुषी होती है ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–११

सूत्र - ५८

चन्द्र का गमन मार्ग किस प्रकार से है ? इन अट्ठाईस नक्षत्रों में चंद्र को दक्षिण आदि दिशा से योग करने-वाले भिन्नभिन्न नक्षत्र इस प्रकार हैं-जो सदा चन्द्र की दक्षिण दिशा से व्यवस्थित होकर योग करते हैं ऐसे छह नक्षत्र हैं-मृगशिर्ष, आर्द्रा, पुष्य, अश्लेषा, हस्त और मूल । अभिजीत, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा-उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, भरणी, पूर्वा-उत्तराफाल्गुनी और स्वाति यह बारह नक्षत्र सदा चंद्र की उत्तर दिशा से योग करते हैं । कृतिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा और अनुराधा ये सात नक्षत्र चन्द्र के साथ दक्षिण और उत्तर दिशा से एवं प्रमर्दरूप योग करते हैं । पूर्वा और उत्तराषाढ़ा चंद्र को दक्षिण से एवं प्रमर्दरूप योग करते हैं । यह सब सर्वबाह्य मंडल में योग करते थे, करते हैं, करेंगे । चन्द्र के साथ सदा प्रमर्द योग करता हुआ एक ही नक्षत्र है-ज्येष्ठा

सूत्र - ५९

चन्द्रमंडल कितने हैं ? पन्द्रह । इन चन्द्रमंडलों में ऐसे आठ चन्द्रमंडल हैं जो सदा नक्षत्र से अविरहित होते हैं-पहला, तीसरा, छठ्ठा, सातवां, आठवां, दसवां, ग्यारहवां और पन्द्रहवां । ऐसे सात चन्द्रमंडल हैं जो सदा नक्षत्र से विरहित

होते हैं-दूसरा, चौथा, पाँचवा, नववां, बारहवां, तेरहवां और चौदहवां । जो चन्द्रमंडल सूर्य-चन्द्र नक्षत्रों में साधारण हो ऐसे चार मंडल हैं-पहला, दूसरा, ग्यारहवां और पन्द्रहवां । ऐसे पाँच चन्द्रमंडल हैं, जो सदा सूर्य से विरहित होते हैं-छठ्ठे से लेकर दसवां ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–१२

सूत्र - ६०

हे भगवन् ! इन नक्षत्रों के देवता के नाम किस प्रकार हैं ? इन २८ नक्षत्रों में अभिजीत नक्षत्र के ब्रह्म नामक देवता हैं, इसी प्रकार श्रवण के विष्णु, घनिष्ठा के वसुदेव, शतभिषा के वरुण, पूर्वाभाद्रपदा के अज, उत्तरा-भाद्रपदा के अभिवृद्धि, रेवती के पूष, अश्विनी के अश्व, भरणी के यम, कृतिका के अग्नि, रोहिणी के प्रजापति, मृगशिरा के सोम, आर्द्रा के रुद्रदेव, पुनर्वसु के अदिति, पुष्य के बृहस्पति, अश्लेषा के सर्प, मघा के पितृदेव, पूर्वा फाल्गुनी के भग, उत्तराफाल्गुनी के अर्यमा, हस्त के सविष्ट, चित्रा के तक्ष, स्वाति के वायु, विशाखा के इन्द्र एवं अग्नि, अनुराधा के मित्र, ज्येष्ठा के इन्द्र, मूल के नैऋर्ति, पूर्वाषाढ़ा के अप् और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के विश्व नामक देवता कहे हुए हैं ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–१३

सूत्र - ६१-६४

हे भगवन् ! मुहूर्त्त के नाम किस प्रकार हैं ? एक अहोरात्र के तीस मुहूर्त्त बताये हैं-यथानुक्रम से-इस प्रकार से हैं । रौद्र, श्रेयान्, मित्रा, वायु, सुग्रीव, अभिचन्द्र, माहेन्द्र, बलवान्, ब्रह्मा, बहुसत्य, ईशान तथा-त्वष्ट्रा, भावितात्मा, वैश्रवण, वरुण, आनंद, विजया, विश्वसेन, प्रजापति, उपशम तथा-गंधर्व, अग्निवेश, शतवृषभ, आतपवान्, अमम, ऋणवान्, भौम, ऋषभ, सर्वार्थ और राक्षस ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–१४

सूत्र - ६५-६८

हे भगवन् ! किस क्रम से दिन का क्रम कहा है ? एक-एक पक्ष के पन्द्रह दिवस हैं-प्रतिपदा, द्वितीया यावत् पूर्णिमा । यह पन्द्रह दिवस के पन्द्रह नाम इस प्रकार हैं- पूर्वांग, सिद्धमनोरम, मनोहर, यशोभद्र, यशोधर, सर्वकामसमृद्ध; इन्द्रमूर्द्धाभिषिक्त, सौमनस, धनंजय, अर्थसिद्ध, अभिजात, अत्याशन, शतंजय; अग्निवेश्म, उपशम

सूत्र - ६९-७२

ये दिवस के नाम हैं । हे भगवन् ! रात्रि का क्रम किस तरह प्रतिपादित किया है ? एक-एक पक्ष में पन्द्रह रात्रियाँ हैं-प्रतिपदारात्रि, द्वितीयारात्रि... यावत्... पन्द्रहवी रात्रि । इन रात्रियों के पन्द्रह नाम इस प्रकार हैं- उत्तमा, सुनक्षत्रा, एलापत्या, यशोधरा, सौमनसा, श्रीसंभूता; विजया, वैजयंती, जयंती, अपराजिता, ईच्छा, समाहारा, तेजा, अतितेजा; पन्द्रहवी देवानन्दा । ये रात्रियों के नाम हैं ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–१५

सूत्र - ७३

हे भगवन् ! यह तिथि किस प्रकार से कही है ? तिथि दो प्रकार की है-दिवसतिथि और रात्रितिथि । वह दिवसतिथि एक-एक पक्ष में पन्द्रह-पन्द्रह होती है-नंदा, भद्रा, जया, तुच्छा, पूर्णा यह पाँच को तीन गुना करना, नाम का क्रम यहीं है । वह रात्रि तिथि भी एक-एक पक्ष में पन्द्रह होती है-उग्रवती, भोगवती, यशस्वती, सव्वसिद्धा, शुभनामा इसी पाँच को पूर्ववत् तीन गुना कर देना ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–१६

सूत्र - ७४

हे भगवन् ! नक्षत्र के गोत्र किस प्रकार से कहे हैं ? इन २८ नक्षत्रोंमें अभिजीत नक्षत्र का गोत्र मुद्गलायन है, इसी तरह श्रवण का शंखायन, घनिष्ठा का अग्रतापस, शतभिषा का कर्णलोचन, पूर्वाभाद्रपद का जातु-कर्णिय,

उत्तराभाद्रपद का धनंजय, रेवती का पौष्यायन, अश्विनी का आश्वायन, भरणी का भार्गवेश, कृतिका का अग्निवेश, रोहिणी का गौतम, मृगशिर्ष का भारद्वाज, आर्द्रा का लौहित्यायन, पुनर्वसु का वाशिष्ठ, पुष्य का कृष्यायन, आश्लेषा का मांडव्यायन, मघा का पिंगलायन, पूर्वाफाल्गुनी का मिल्लायन, उत्तराफाल्गुनी का कात्यायन, हस्त का कौशिक, चित्रा का दर्भियायन, स्वाति का चामरच्छायण, विशाखा का शृंगायन, अनुराधा का गोलव्वायण, ज्येष्ठा का तिष्यायन, मूल का कात्यायन, पूर्वाषाढ़ा का वात्स्यायन और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का व्याघ्रायन गोत्र कहा गया है ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–१७

सूत्र - ७५

हे भगवन् ! नक्षत्र का भोजना किस प्रकार का है ? इन २८ नक्षत्रोंमें कृतिका नक्षत्र दहीं और भात खाकर, रोहिणी-धतूरे का चूर्ण खाकर, मृगशिरा-इन्द्रावारुणि चूर्ण खाके, आर्द्रा-मक्खन खाके, पुनर्वसु-घी खाके, पुष्य-खीर खाके, अश्लेषा-अजमा का चूर्ण खाके, मघा-कस्तूरी खाके, पूर्वाफाल्गुनी-मंडुकपर्णिका चूर्ण खाके, उत्तराफाल्गुनी-वाघनखी का चूर्ण खाके, हस्त-चावल की कांजी खाके, चित्रा-मुँग की दाल खाके, स्वाति-फल खाके, विशाखा-अगस्ति खाके, अनुराधा-मिश्रिकृत कुर खाके, ज्येष्ठा-बोर का चूर्ण खाके, मूल (मूलापन्न)-शाक खाके, पूर्वाषाढ़ा-आमले का चूर्ण खाके, उत्तराषाढ़ा-बिल्वफल खाके, अभिजीत-पुष्प खाके, श्रवण-खीर खाके, घनिष्ठा-फल खाके, शतभिषा-तुवेर खाके, पूर्वाप्रौष्ठपदा-करेला खाके, उत्तराप्रौष्ठपदा-वराहकंद खाके, रेवती-जलचर वनस्पति खाके, अश्विनी-वृत्तक वनस्पति चूर्ण खाके, भरणी नक्षत्रमें तिलतन्दुक खाकर कार्य सिद्ध करना

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–१८

सूत्र - ७६

हे भगवन् ! गति भेद किस प्रकार से है ? गतिभेद (चार) दो प्रकार से है-सूर्यचार और चन्द्रचार । चंद्र चार-पाँच संवत्सरात्मक युग काल में अभिजीत नक्षत्र ६७ चार से चंद्र का योग करता है, श्रवण नक्षत्र ६७ चार से चन्द्र का योग करता है यावत् उत्तराषाढ़ा भी ६७ चार से चन्द्र के साथ योग करता है । आदित्यचार-भी इसी प्रकार समझना, विशेष यह कि उनमें पाँच चार (गतिभेद) कहना ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–१९

सूत्र - ७७-७९

हे भगवन् ! मास के नाम किस प्रकार से हैं ? एक-एक संवत्सर में बारह मास होते हैं; उसके लौकिक और लोकोत्तर दो प्रकार के नाम हैं ।

लौकिक नाम-श्रावण, भाद्रपद, आसोज, कार्तिक, मृगशिर्ष, पौष, महा, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और अषाढ़ । लोकोत्तर नाम इस प्रकार हैं- अभिनन्द, सुप्रतिष्ठ, विजय, प्रीतिवर्द्धन, श्रेयांस, शिव, शिशिर, और हैमवान् तथा- वसन्त, कुसुमसंभव, निदाघ और बारहवें वनविरोधि ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–२०

सूत्र - ८०

हे भगवन् ! संवत्सर कितने हैं ? पाँच - नक्षत्रसंवत्सर, युगसंवत्सर, प्रमाणसंवत्सर, लक्षणसंवत्सर और शनैश्चरसंवत्सर ।

सूत्र - ८१

नक्षत्रसंवत्सर बारह प्रकार का है-श्रावण, भाद्रपद से लेकर आषाढ़ तक । बृहस्पति महाग्रह बारह संवत्सर में सर्व नक्षत्र मंडल पूर्ण करता है ।

सूत्र - ८२

युग संवत्सर पाँच प्रकार का है । चांद्र, चांद्र, अभिवर्धित, चांद्र और अभिवर्धित । प्रत्येक चान्द्र संवत्सर चौबीस-

चौबीस पर्व (पक्ष) के और अभिवर्धित संवत्सर छब्बीस-छब्बीस पर्व के होते हैं । इस प्रकार सब मिलाकर पंच संवत्सर का एक युग १२४ पर्वों (पक्षों) का होता है ।

सूत्र - ८३

प्रमाण संवत्सर पाँच प्रकार का है । नक्षत्र, चन्द्र, ऋतु, आदित्य और अभिवर्धित ।

सूत्र - ८४

लक्षण संवत्सर पाँच प्रकार का है । नक्षत्र यावत् अभिवर्द्धित । उसका वर्णन इस प्रकार से है -

सूत्र - ८५

समग्र नक्षत्र योग करते हैं, समग्र ऋतु का परिवर्तन होता है, अतिशीत या अतिउष्ण नहीं ऐसे बहुउदक नक्षत्र होते हैं ।

सूत्र - ८६

चंद्र सर्व पूर्णमासी में विषमचारी नक्षत्र से योग करता है । कटुक-बहुउदक वालों को चांद्रसंवत्सर कहते हैं

सूत्र - ८७

विषमप्रवाल का परिणमन, ऋतुरहित पुष्प-फलकी प्राप्ति, वर्षा विषम बरसना, वह ऋतुसंवत्सर कर्म है

सूत्र - ८८

आदित्य संवत्सर में पृथ्वी और पानी को रस तथा पुष्प-फल देता है, अल्प वर्षा से भी सरस ऐसी सम्यक् निष्पत्ति होती है ।

सूत्र - ८९

अभिवर्द्धित संवत्सर में सूर्य का ताप तेज होता है, क्षणलव दिवस में ऋतु परिवर्तित होती है, निम्नस्थल की पूर्ति होती है ।

सूत्र - ९०

शनिश्चर संवत्सर अट्ठाईस प्रकार का होता है-अभिजीत, श्रवण यावत् उत्तराषाढ़ा अथवा तीस संवत्सर में शनिश्चर महाग्रह सर्व नक्षत्र मंडलों में परिभ्रमण करता है ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–२१

सूत्र - ९१

हे भगवन् ! नक्षत्र ज्योतिष्क द्वारा किस प्रकार से हैं ? इस विषय में यह पाँच प्रतिपत्तियाँ हैं । एक कहता है कि कृत्तिकादि सात नक्षत्र पंच द्वारवाले हैं, दूसरा मघादि सात को पूर्वद्वारीय कहता है, तीसरा घनिष्ठादि सात को, चौथा अश्विनी आदि सात को और पाँचवा भरणी आदि सात नक्षत्र को पूर्वद्वारीय कहता है । जो कृतिकादि सात को पूर्वद्वारीय कहते हैं उनके मत से-मघादि सात दक्षिण द्वारीय हैं, अनुराधादि सात पश्चिमद्वारीय हैं और घनिष्ठादि सात उत्तरद्वारीय हैं । जो मघादि सात को पूर्वद्वारीय बताते हैं, उनके मतानुसार-अनुराधादि सात नक्षत्र दक्षिणद्वारीय हैं, घनिष्ठादि सात नक्षत्र पश्चिमद्वारीय हैं तथा कृतिकादि सात नक्षत्र उत्तरद्वारीय हैं ।

जो घनिष्ठादि सात नक्षत्र को पूर्वद्वारीय बताते हैं, उनके मत से-कृतिकादि सात नक्षत्र दक्षिणद्वारीय हैं, मघादि सात नक्षत्र पश्चिमद्वारीय हैं और अनुराधादि सात नक्षत्र उत्तरद्वारीय हैं । जो अश्विनी आदि सात नक्षत्र को पूर्वद्वारीय बताते हैं, उनके मत से-पुष्यादि सात नक्षत्र दक्षिणद्वारीय हैं, स्वाति आदि सात नक्षत्र पश्चिमद्वारीय हैं और अभिजीत आदि सात नक्षत्र उत्तरद्वारीय हैं । भरणी आदि सात नक्षत्र को पूर्वद्वारीय बताते हैं, उनके मत से -आश्लेषादि ७ नक्षत्र दक्षिणद्वारीय हैं, विशाखादि सात नक्षत्र पश्चिमद्वारीय हैं, श्रवणादि ७ नक्षत्र उत्तरद्वारीय हैं

भगवंत फरमाते हैं कि अभिजीत, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती ये सात पूर्वद्वारीय हैं; अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा और पुनर्वसु ये सात नक्षत्र दक्षिणद्वारीय हैं; पुष्य,

आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा ये सात नक्षत्र पश्चिमद्वारीय हैं; स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा ये सात नक्षत्र उत्तरद्वारीय हैं ।

प्राभृत-१० – प्राभृत-प्राभृत–२२

सूत्र - ९२

हे भगवन् ! नक्षत्रविचय किस प्रकार से कहा है ? यह जंबूद्वीप सर्वद्वीप-समुद्रों से ठीक बीच में यावत् घीरा हुआ है । इस जंबूद्वीप में दो चन्द्र प्रकाशित हुए थे, होते हैं और होंगे; दो सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे; छप्पन नक्षत्रों ने योग किया था, करते हैं ओर करेंगे-वह नक्षत्र इस प्रकार है-दो अभिजीत, दो श्रवण, दो घनिष्ठा... यावत्... दो उत्तराषाढ़ा । इन छप्पन नक्षत्रों में दो अभिजीत नक्षत्र ऐसे हैं जो चन्द्र के साथ नवमुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त में सत्ताईस सडसट्ठांश भाग से योग करते हैं, चन्द्र के साथ पन्द्रह मुहूर्त्त से योग करनेवाले नक्षत्र बारह हैं-दो उत्तरा-भाद्रपदा, दो रोहिणी, दो पुनर्वसु, दो उत्तराफाल्गुनी, दो विशाखा और दो उत्तराषाढ़ा ।

तीस मुहूर्त्त से चन्द्र के साथ योग करनेवाले तीस नक्षत्र हैं । श्रवण, घनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, कृतिका, मृगशिर्ष, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढ़ा ये सब दो-दो । पीस्तालीश मुहूर्त्त से चन्द्र के साथ योग करनेवाले नक्षत्र बारह हैं । दो उत्तराभाद्रपद, दो रोहिणी, दो पुनर्वसु, दो उत्तराफाल्गुनी, दो विशाखा और दो उत्तराषाढ़ा ।

सूर्य के साथ चार अहोरात्र एवं छ मुहूर्त्त से योग करनेवाले नक्षत्र दो अभिजीत हैं; बारह नक्षत्र सूर्य के साथ छ अहोरात्र एवं इक्कीस मुहूर्त्त से योग करते हैं-दो शतभिषा, दो भरणी, दो आर्द्रा, दो अश्लेषा, दो स्वाति और दो ज्येष्ठा । तीस नक्षत्र सूर्य के साथ तेरह अहोरात्र एवं बारह मुहूर्त्त से योग करते हैं-दो श्रवण यावत् दो पूर्वाषाढ़ा; १२ नक्षत्र सूर्य से २० अहोरात्र एवं तीन मुहूर्त्त से योग करते हैं । दो उत्तरा भाद्रपद यावत् दो उत्तराषाढ़ा

सूत्र - ९३

हे भगवन् ! सीमाविष्कम्भ किस प्रकार से है ? इन ५६ नक्षत्रोंमें दो अभिजीत नक्षत्र ऐसे हैं जिसका सीमा विष्कम्भ ६३० भाग एवं ३०/६७ भाग है; १२ नक्षत्र का १००५ एवं ३०/६७ भाग सीमा विष्कम्भ है-दो शतभिषा यावत् दो ज्येष्ठा; तीस नक्षत्र का सीमाविष्कम्भ २०१० एवं तीस सडसट्ठांश भाग है-दो श्रवण यावत् दो पूर्वाषाढ़ा, बारह नक्षत्र ३०१५ एवं तीस सडसट्ठांश भाग सीमा विष्कम्भ से हैं-दो उत्तरा भाद्रपदा यावत् दो उत्तराषाढ़ा ।

सूत्र - ९४

इन ५६नक्षत्रोंमें ऐसे कोई नक्षत्र नहीं है जो सदा प्रातःकाल में चन्द्र से योग करके रहते हैं । सदा सायंकाल और सदा उभयकाल चन्द्र से योग करके रहनेवाला भी कोई नक्षत्र नहीं है । केवल दो अभिजीत नक्षत्र ऐसे हैं जो चुंवालीसवी-चुंवालीसवी अमावास्या में निश्चितरूप से प्रातःकाल में चन्द्र से योग करते हैं, पूर्णिमा में नहीं करते ।

सूत्र - ९५

निश्चितरूप से बासठ पूर्णिमा एवं बासठ अमावास्याएं इन पाँच संवत्सरवाले युग में होती है । जिस देश में अर्थात् मंडल में चन्द्र सर्वान्तिम बांसठवी पूर्णिमा का योग करता है, उस पूर्णिमा स्थान से अनन्तर मंडल का १२४ भाग करके उसके बतीसवें भाग में वह चन्द्र पहली पूर्णिमा का योग करता है, वह पूर्णिमावाले चंद्रमंडल का १२४ भाग करके उसके बतीसवे भाग प्रदेश में यह दूसरी पूर्णिमा का चन्द्र योग करती है, इसी अभिलाप से इस संवत्सर की तीसरी पूर्णिमा को भी जानना । जिस प्रदेश चंद्र तीसरी पूर्णिमा का योग समाप्त करता है, उस पूर्णिमा स्थान से उस मंडल को १२४ भाग करके २२८ वें भाग में यह चन्द्र बारहवीं पूर्णिमा का योग करता है । इसी अभिलाप से उन-उन पूर्णिमा स्थान में एक-एक मंडल के १२४-१२४ भाग करके बत्तीसवें-बत्तीसवें भाग में इस संवत्सर की आगे-आगे की पूर्णिमा के साथ चन्द्र योग करता है । इसी जंबूद्वीप में पूर्व-पश्चिम लम्बी और उत्तर-दक्षिण विस्तार-वाली जीवारूप मंडल का १२४ भाग करके दक्षिण विभाग के चतुर्थांश मंडल के सत्ताईस भाग ग्रहण करके, अट्ठाईसवे भाग को बीससे विभक्त करके अट्ठारहवे भाग को ग्रहण करके तीन भाग एवं दो कला से पश्चात्स्थित चउब्भाग मंडल को प्राप्त किए

बिना यह चन्द्र अन्तिम बावनवीं पूर्णिमा के साथ योग करता है ।

सूत्र - ९६

इस पंचसंवत्सरात्मक युग में प्रथम पूर्णिमा के साथ सूर्य किस मंडलप्रदेश में रहकर योग करता है ? जिस देश में सूर्य सर्वान्तिम बासठवीं पूर्णिमा के साथ योग करता है उस मंडल के १२४ भाग करके चोरानवे भाग को ग्रहण करके यह सूर्य प्रथम पूर्णिमा से योग करता है । इसी अभिलाप से पूर्ववत्-इस संवत्सर की दूसरी और तीसरी पूर्णिमा से भी योग करता है । इसी तरह जिस मंडल प्रदेश में यह सूर्य तीसरी पूर्णिमा को पूर्ण करता है उस पूर्णिमा स्थान के मंडल को १२४ भाग करके ८४६वा भाग ग्रहण करके यह सूर्य बारहवीं पूर्णिमा के साथ योग करता है । इसी अभिलाप से वह सूर्य उन उन मंडल के १२४ भाग करके ९४वे-९४वे भाग को ग्रहण करके उन-उन प्रदेशमें आगे-आगे की पूर्णिमा से योग करता है । चन्द्र समान अभिलाप से बावनवीं पूर्णिमाके गणितको समझना

सूत्र - ९७

इस पंच संवत्सरात्मक युग में चन्द्र का प्रथम अमावास्या के साथ योग बताते हैं-जिस देश में अन्तिम बावनवीं अमावास्या के साथ चन्द्र योग करके पूर्ण करता है, उस देश-मंडल के १२४ भाग करके उसके बत्तीसवें भाग में प्रथम अमावास्या के साथ चंद्र योग करता है, चन्द्र का पूर्णिमा के साथ योग जिस अभिलाप से बताए हैं उसी अभिलाप से अमावास्या के योग को समझ लेना... यावत्... जिस देश में चंद्र अन्तिम पूर्णिमा के साथ योग करता है उसी देश में वह-वह पूर्णिमा स्थानरूप मंडल के १२४ भाग करके सोलह भाग को छोड़कर यह चन्द्र बासठवीं अमावास्या के साथ योग करता है ।

सूत्र - ९८

अब सूर्य का अमावास्या के साथ योग बताते हैं-जिस मंडल प्रदेश में सूर्य अन्तिम बासठवीं अमावास्या के साथ योग करता है, उस अमावास्या स्थानरूप मंडल को १२४ भाग करके ९४वे भाग ग्रहण करके यह सूर्य इस संवत्सर की प्रथम अमावास्या के साथ योग करता है, इस प्रकार जैसे सूर्य का पूर्णिमा के साथ योग बताया था, उसीके समान अमावास्या को भी समझ लेना... यावत्... अन्तिम बावनवीं अमावास्या के बारे में कहते हैं कि-जिस मंडलप्रदेश में सूर्य अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को पूर्ण करता है, उस पूर्णिमास्थान मंडल के १२४ भाग करके ४७ भाग छोड़कर यह सूर्य अन्तिम बासठवी अमावास्या के साथ योग करता है ।

सूत्र - ९९

इस पंच संवत्सरात्मक युग में प्रथम पूर्णिमा में चंद्र किस नक्षत्र से योग करता है ? घनिष्ठा नक्षत्र से योग करता है, घनिष्ठा नक्षत्र के तीन मुहूर्त्त पूर्ण एवं एक मुहूर्त्त के उन्नीस बासट्ठांश भाग तथा बासठवें भाग को सडसठ से विभक्त करके जो पैंसठ चूर्णिका भाग शेष रहता है, उस समय में चंद्र प्रथम पूर्णिमा को समाप्त करता है । सूर्य पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के अट्ठाईस मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के 48/62 भाग तथा बासठवें भाग के सडसठ भाग करके बत्तीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर सूर्य प्रथम पूर्णिमा को समाप्त करता है ।

दूसरी पूर्णिमा-उत्तरा प्रौष्ठपदा के सत्ताईस मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के चौद बासट्ठांश भाग तथा बासठवें भाग को सडसठ से विभक्त करके जो बासठ चूर्णिका भाग शेष रहता है तब चंद्र दूसरी पूर्णिमा को समाप्त करता है और चित्रा नक्षत्र के एक मुहूर्त्त के अट्ठाईस बासठांस भाग तथा बासठवें भाग को सडसठ से विभक्त करके तीस चूर्णिका शेष रहता है तब सूर्य दूसरी पूर्णिमा को समाप्त करता है ।तीसरी पूर्णिमा-उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के छब्बीस मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के छब्बीस बासट्ठांश भाग तथा बासठ भाग को सडसठ से विभक्त करके जो चोप्पन चूर्णिका भाग शेष रहता है तब चंद्र तीसरी पूर्णिमा को समाप्त करता है । पुनर्वसु नक्षत्र के सोलह मुहूर्त्त और एक मुहूर्त्त के आठ बासठांश भाग तथा बासठ भाग को सडसठ से विभक्त करके बीस चूर्णिका भाग शेष रहता है तब सूर्य तीसरी पूर्णिमा को पूर्ण करता है । चंद्र उत्तराषाढ़ा के चरम समय में बासठवीं पूर्णिमा को समाप्त करता है और सूर्य पुष्य नक्षत्र के उन्नीस मुहूर्त्त और एक मुहूर्त्त के तेयालीस बासट्ठांश भाग तथा बासठवें भाग को सडसठ से विभक्त करके तेतीस चूर्णिका भाग शेष रहने

पर बासठवीं पूर्णिमा को समाप्त करता है ।

सूत्र - १००

इस पंच संवत्सरात्मक युग में प्रथम अमावास्या में चंद्र अश्लेषा नक्षत्र से योग करता है । आश्लेषा नक्षत्र का एक मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के ४०/६२ भाग मुहूर्त्त तथा बासठवें भाग को सडसठ से विभक्त करके बासठ चूर्णिका भाग शेष रहने पर चन्द्र प्रथम अमावास्या को समाप्त करता है, अश्लेषा नक्षत्र के ही साथ चन्द्र के समान गणित से सूर्य प्रथम अमावास्या को समाप्त करता है । अन्तिम अमावास्या को चंद्र और सूर्य पुनर्वसु नक्षत्र से योग करके समाप्त करते हैं । उस समय पुनर्वसु नक्षत्र के २२ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के ४२/६२ भाग शेष रहता है ।

सूत्र - १०१

जिस नक्षत्र के साथ चन्द्र जिस देशमें योग करता है वही ८१९ मुहूर्त्त तथा एक मुहूर्त्त के २४/६२ भाग तथा बासठवें भाग को ६७ से विभक्त करके ६२ चूर्णिका भाग को ग्रहण करके पुनः वही चंद्र अन्य जिस प्रदेश में सदृश नक्षत्र के साथ योग करता है, विवक्षित दिन में चन्द्र जिस नक्षत्र से जिस प्रदेश में योग करता है वह १६३८ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के 49/६२ भाग तथा बांसठवे भाग को ६७ से विभक्त करके ६५ चूर्णिका भाग ग्रहण करके पुनः वही चंद्र उसी नक्षत्र से योग करता है । जिस मंडल प्रदेश में जिस नक्षत्र के साथ चंद्र योग करता है, उसी मंडल में ५४९०० मुहूर्त्त ग्रहण करके पुनः वही चंद्र अन्य सदृश नक्षत्र के साथ योग करता है । विवक्षित दिवस में चन्द्र जिस नक्षत्र से योग करता है, वही चंद्र १०९८०० मुहूर्त्त ग्रहण करके पुनः वही चन्द्र उसी नक्षत्र से योग करता है ।

विवक्षित दिवस में सूर्य जिस मंडलप्रदेश में जिस नक्षत्र से योग करता है, वही सूर्य ३६६ अहोरात्र ग्रहण करके पुनः वही सूर्य अन्य सदृश नक्षत्र से उसी प्रदेश में योग करता है । विवक्षित दिवस में जिस नक्षत्र के साथ जिस मंडल प्रदेश में योग करता है, वही सूर्य ७३२ रात्रिदिनों को ग्रहण करके पुनः उसी नक्षत्र से योग करता है । इसी प्रकार १८३० अहोरात्र में वही सूर्य उसी प्रदेशमंडल में अन्य सदृश नक्षत्र से योग करता है और ३६६० अहोरात्र वहीं सूर्य पुनः उसी पूर्वनक्षत्र से योग करता है ।

सूत्र - १०२

जिस समय यह चंद्र गति समापन्न होता है, उस समय अन्य चंद्र भी गति समापन्न होता है; जब अन्य चंद्र गति समापन्न होता है उस समय यह चंद्र भी गति समापन्न होता है । इसी तरह सूर्य के ग्रह के और नक्षत्र के सम्बन्ध में भी जानना । जिस समय यह चंद्र योगयुक्त होता है, उस समय अन्य चंद्र भी योगयुक्त होता है और जिस समय अन्य चंद्र योगयुक्त होता है उस समय यह चंद्र भी योगयुक्त होता है । इस तरह सूर्य के, ग्रह के और नक्षत्र के विषय में भी समझ लेना । चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्र सदा योगयुक्त ही होते हैं ।

प्राभृत-१०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–११

सूत्र - १०३

हे भगवन् ! संवत्सर का प्रारंभ किस प्रकार से कहा है ? निश्चय से पाँच संवत्सर कहे हैं-चांद्र, चांद्र, अभिवर्धित, चांद्र और अभिवर्धित । इसमें जो पाँचवे संवत्सर का पर्यवसान है वह अनन्तर पुरस्कृत समय यह प्रथम संवत्सर की आदि है, द्वितीय संवत्सर की जो आदि है वहीं अनन्तर पश्चात्कृत् प्रथम संवत्सर का समाप्ति काल है । उस समय चंद्र उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के छब्बीस मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के छब्बीस बासट्ठांश भाग तथा बासठवें भाग को सडसठ से विभक्त करके चोपन चूर्णिका भाग शेष रहने पर योग करके परिसमाप्त करता है । और सूर्य पुनर्वसु नक्षत्र से सोलह मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के आठ बासट्ठांश भाग तथा बासठवे भाग को सडसठ से विभक्त करके बीस चूर्णिका भाग शेष रहने पर योग करके प्रथम संवत्सर को समाप्त करते हैं ।

इसी तरह प्रथम संवत्सर का पर्यवसान है वह दूसरे संवत्सर की आदि है, दूसरे का पर्यवसान वह तीसरे संवत्सर की आदि है, तीसरे का पर्यवसान वह चौथे संवत्सर की आदि है, चौथे का पर्यवसान, वह पाँचवे संवत्सर की आदि है । तीसरे संवत्सर के प्रारंभ का अनन्तर पश्चात्कृत् समय दूसरे संवत्सर की समाप्ति है... यावत्.. प्रथम संवत्सर की आदि का अनन्तर पश्चात्कृत् समय पाँचवे संवत्सर की समाप्ति है ।

दूसरे संवत्सर की परिसमाप्ति में चन्द्र पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र से योग करता है, तीसरे में उत्तराषाढ़ा से, चौथे में उत्तराषाढ़ा और पाँचवे संवत्सर की समाप्ति में भी चन्द्र उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से योग करता है और सूर्य दूसरे से चौथे संवत्सर की समाप्ति में पुनर्वसु से तथा पाँचवे संवत्सर की समाप्ति में पुष्य नक्षत्र से योग करता है ।

नक्षत्र के मुहूर्त्त आदि गणित प्रथम संवत्सर की समाप्ति में दिए हैं, बाद में दूसरे से पाँचवे की समाप्ति में छोड़ दिए हैं । अक्षरशः अनुवाद में गणितीक क्लिष्टता के कारण ऐसा किया है । जिज्ञासुओं को विज्ञप्ति की वह मूल पाठ का अनुसरण करे ।

प्राभृत-११-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–१२

सूत्र - १०४

हे भगवन् ! कितने संवत्सर कहे हैं ? निश्चय से यह पाँच संवत्सर कहे हैं-नक्षत्र, चंद्र, ऋतु, आदित्य और अभिवर्धित । प्रथम नक्षत्र संवत्सर का नक्षत्र मास तीस मुहूर्त्त अहोरात्र प्रमाण से सत्ताईस रात्रिदिन एवं एक रात्रि-दिन के इक्कीस सडसठांश भाग से रात्रिदिन कहे हैं । वह नक्षत्र मास ८१९ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के सत्ताईस सडसट्ठांश भाग मुहूर्त्त परिमाण से कहा गया है । इस मुहूर्त्त परिमाण रूप अन्तर को बारह गुना करके नक्षत्र संवत्सर परिमाण प्राप्त होता है, उसके ३२७ अहोरात्र एवं एक अहोरात्र के इकावन बासठांश भाग प्रमाण कहा है और उसके मुहूर्त्त ९८३२ एवं एक मुहूर्त्त के छप्पन सडसठांश भाग प्रमाण होते हैं ।

चंद्र संवत्सर का चन्द्रमास तीस मुहूर्त्त अहोरात्र से गिनते हुए उनतीस रात्रिदिन एवं एक रात्रिदिन के बत्तीस बासठांश भाग प्रमाण है । उसका मुहूर्त्तप्रमाण ८५० मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के तैंतीस छासठांश भाग प्रमाण कहा है, इसको बारह गुना करने से चन्द्र संवत्सर प्राप्त होता है, जिनका रात्रिदिन प्रमाण ३५४ अहोरात्र एवं एक रात्रि के बारह बासठांश भाग प्रमाण है, इसी तरह मुहूर्त्त प्रमाण भी कह लेना ।

तृतीय ऋतु संवत्सर का ऋतुमास तीस मुहूर्त्त प्रमाण अहोरात्र से गीनते हुए तीस अहोरात्र प्रमाण कहा है, उसका मुहूर्त्त प्रमाण ९०० है, इस मुहूर्त्त को बारह गुना करके ऋतु संवत्सर प्राप्त होता है, जिनके रात्रिदिन ३६० है और मुहूर्त्त १०८०० है ।

चौथे आदित्य संवत्सर का आदित्य मास तीस मुहूर्त्त प्रमाण से गीनते हुए तीस अहोरात्र एवं अर्ध अहोरात्र प्रमाण है, उनका मुहूर्त्त प्रमाण ९१६ है, इसको बारह गुना करके आदित्य संवत्सर प्राप्त होता है, जिनके दिन ३६६ और मुहूर्त्त १०९८० होते हैं ।

पाँचवां अभिवर्धित संवत्सर का अभिवर्धित मास तीस मुहूर्त्त अहोरात्र से गीनते हुए इकतीस रात्रिदिन एवं उनतीस मुहूर्त्त तथा एक मुहूर्त्त के सत्तरह बासठांश भाग प्रमाण कहा है, मुहूर्त्त प्रमाण ९५९ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के सत्तरह बासठांश भाग है, इनको बारह गुना करने से अभिवर्धित संवत्सर प्राप्त होता है, उनके रात्रिदिन ३८३ एवं इक्कीस मुहूर्त्त तथा एक मुहूर्त्त के अट्ठारह बासठांश भाग प्रमाण है, इसी तरह मुहूर्त्त भी कह लेना ।

सूत्र - १०५

समस्त पंच संवत्सरों का एक युग १७९१ अहोरात्र एवं उन्नीस मुहूर्त्त तथा एक मुहूर्त्त के सत्तावन बासठांश भाग तथा बासठवें भाग को सडसठ से विभक्त करके पचपन चूर्णिका भाग अहोरात्र प्रमाण है । उसके मुहूर्त्त ५३७४९ एवं एक मुहूर्त्त के सत्तावन बासठांश भाग तथा बांसठवे भाग के पचपन सडसठांश भाग प्रमाण है । अहोरात्र युग प्रमाण अडतीस अहोरात्र एवं दश मुहूर्त्त तथा एक मुहूर्त्त के चार बासठांश भाग तथा बासठवें भाग के बारह सडसठांश भाग है । इसका मुहूर्त्त प्रमाण ११५० मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के चार बासठांश भाग तथा ६२/६७ से विभक्त कर के बारह चूर्णिका भाग है । रात्रिदिन का प्रमाण १८३० है, तथा ५४९०० मुहूर्त्त प्रमाण ।

सूत्र - १०६

एक युग में साठ सौरमास और बासठ चांद्रमास होते हैं । इस समय को छह गुना करके बारह से विभक्त करने से तीस आदित्य संवत्सर और इकतीस चांद्र संवत्सर होते हैं । एक युग में साठ आदित्य मास, एकसठ ऋतु मास, बासठ चांद्रमास और सडसठ नक्षत्र मास होते हैं और इसी प्रकार से साठ आदित्य संवत्सर यावत् सडसठ नक्षत्र संवत्सर होते हैं । अभिवर्धित संवत्सर सत्तावन मास, सात अहोरात्र, ग्यारह मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के तेईस बासठांश भाग प्रमाण है, आदित्य संवत्सर साठ मास प्रमाण है, ऋतु संवत्सर एकसठ मास प्रमाण है, चांद्र संवत्सर बासठ मास प्रमाण है और नक्षत्र संवत्सर सडसठ मास प्रमाण है । इस समय को १५६ से गुणित करके तथा बार से विभाजित करके अभिवर्धित आदि संवत्सर का प्रमाण प्राप्त होता है ।

सूत्र - १०७

निश्चय से ऋतु छह प्रकार की है-प्रावृट्, वर्षारात्र, शरद, हेमंत, वसंत और ग्रीष्म । यह सब अगर चंद्रऋतु होती हैं तो दो-दो मास प्रमाण होती हैं, ३५४ अहोरात्र से गीनते हुए सातिरेक उनसाठ-उनसाठ रात्रि प्रमाण होती है। इसमें छह अवमरात्र-क्षयदिवस कहे हैं-तीसरे, सातवें-ग्यारहवें, पन्द्रहवें-उन्नीसवें और तेईस में पर्व में अवमरात्रि होती है । छह अतिरात्र-वृद्धिदिवस कहे हैं जो चौथे-आठवें-बारहवें-सोलहवें-बीसवें और चौबीसवें पर्व में होता है ।

सूत्र - १०८

सूर्यमास की अपेक्षा से छ अतिरात्र और चांद्रमास की अपेक्षा से छह अवमरात्र प्रत्येक वर्षमें आते हैं

सूत्र - १०९

एक युग में पाँच वर्षाकालिक और पाँच हैमन्तिक ऐसी दश आवृत्ति होती है । इस पंच संवत्सरात्मक युग में प्रथम वर्षाकालिक आवृत्ति में चंद्र अभिजीत नक्षत्र से योग करता है, उस समय में सूर्य पुष्य नक्षत्र से योग करता है, पुष्य नक्षत्र से उनतीस मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के तेयालीस बासठांश भाग तथा बासठवें भाग को सडसठ से विभक्त करके तैंतीस चूर्णिका भाग प्रमाण शेष रहता है तब सूर्य पहली वर्षाकालिक आवृत्ति को पूर्ण करता है । दूसरी वर्षाकालिकी आवृत्ति में चंद्र मृगशिरा नक्षत्र से और सूर्य पुष्य नक्षत्र से योग करता है, तीसरी वर्षाकालिकी आवृत्ति में चंद्र विशाखा नक्षत्र से और सूर्य पुष्य नक्षत्र से योग करता है, चौथी में चंद्र रेवती के साथ और सूर्य पुष्य के साथ ही योग करता है, पाँचवी में चंद्र पूर्वाफाल्गुनी के साथ और पुष्य के साथ ही योग करता है । पुष्य नक्षत्र गणित प्रथम आवृत्ति के समान ही है, चन्द्र के साथ योग करनेवाले नक्षत्र गणितमें भिन्नता है वह मूलपाठ से जान लेना ।

सूत्र - ११०

इस पंच संवत्सरात्मक युग में प्रथम हैमन्तकालिकी आवृत्ति में चंद्र हस्तनक्षत्र से और सूर्य उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से योग करता है, दूसरी हैमन्तकालिकी आवृत्ति में चंद्र शतभिषा नक्षत्र से योग करता है, इसी तरह तीसरी में चन्द्र का योग पुष्य के साथ, चौथी में चन्द्र का योग मूल के साथ और पाँचवी हैमन्तकालिकी आवृत्ति में चन्द्र का योगकृतिका के साथ होता है और इन सब में सूर्य का योग उत्तराषाढ़ा के साथ ही रहता है ।

प्रथम हैमन्तकालिकी आवृत्ति में चन्द्र जब हस्त नक्षत्र से योग करता है तो हस्त नक्षत्र पाँच मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के पचास बासठांश भाग तथा बासठवें भाग के सडसठ भाग से विभक्त करके साठ चूर्णिका भाग शेष रहते हैं और सूर्य का उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से योग होता है तब उत्तराषाढ़ा का चरम समय होता है, पाँचों आवृत्ति में उत्तरा-षाढ़ा का गणित इसी प्रकार का है, लेकिन चंद्र के साथ योग करनेवाले नक्षत्रों में भिन्नता है, वह मूल पाठ स जान लेना ।

सूत्र - १११

निश्चय से योग दस प्रकार के हैं-वृषभानुजात, वेणुकानुजात, मंच, मंचातिमंच, छत्र, छत्रातिछत्र, युगनद्ध, धनसंमर्द, प्रीणित और मंडुकप्लुत । इसमें छत्रातिछत्र नामक योग चंद्र किस देश में करता है ? जंबूद्वीप की पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण लम्बी जीवा के १२४ भाग करके नैऋत्य कोने के चतुर्थांश प्रदेश में सत्ताईस अंशो को भोगकर अट्ठाइसवें को बीस से विभक्त करके अट्ठारह भाग ग्रहण करके तीन अंश और दो कला से नैऋत्य कोण के समीप चन्द्र रहता है । उसमें चन्द्र उपर, मध्य में नक्षत्र और नीचे सूर्य होने से छत्रातिछत्र योग होते हैं और चन्द्र चित्रानक्षत्र के अन्त भाग में रहता है ।

प्राभृत-१२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–१३

सूत्र - ११२

हे भगवन् ! चंद्रमा की क्षयवृद्धि कैसे होती है ? ८८५ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के ३०/६२ भाग से शुक्लपक्ष से कृष्णपक्षमें गमन करके चंद्र ४४२ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के ४६/६२ भाग यावत् इतने मुहूर्त्त में चंद्र राहुविमान प्रभा से रंजित होता है, तब प्रथम दिन का एक भाग यावत् पंद्रहवे दिन का पन्द्रहवे भाग में चंद्र रक्त होता है, शेष समय में चंद्र रक्त या विरक्त होता है । यह पन्द्रहवा दिन अमावास्या होता है, यह है प्रथम पक्ष । इस कृष्णपक्ष से शुक्लपक्ष में गमन करता हुआ चंद्र ४४२ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के छयालीस बासठांश भाग से चंद्र विरक्त होता जाता है, एकम में एक भाग से यावत् पूर्णिमा को पन्द्रह भाग से विरक्त होता है, यह है पूर्णिमा और दूसरा पक्ष ।

सूत्र - ११३

निश्चय से एक युग में बासठ पूर्णिमा और बासठ अमावास्या होती है, बासठवीं पूर्णिमा सम्पूर्ण विरक्त और बासठवीं अमावास्या सम्पूर्ण रक्त होती है । यह १२४ पक्ष हुए । पाँच संवत्सर काल से यावत् किंचित् न्यून १२४ प्रमाण समय असंख्यात समय देशरक्त और विरक्त होता है । अमावास्या और पूर्णिमा का अन्तर ४४२ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के छयालीस बासठांश भाग प्रमाण होता है । अमावास्या से अमावास्या का अन्तर ८८५ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के बत्तीस बासठांश भाग प्रमाण होता है, पूर्णिमा से पूर्णिमा का अन्तर इसी तरह समझना । यही चंद्र मास है

सूत्र - ११४

चंद्र अर्धचान्द्र मास में कितने मंडल में गमन करता है ? वह चौदह मंडल एवं पन्द्रहवा मंडल का चतुर्थांश भाग गमन करता है । सूर्य क अर्द्धमास में चंद्र सोलह मंडल में गमन करता है । सोलह मंडल चारी वही चंद्र का उदय होता है और दूसरे दो अष्टक में निष्क्रम्यमान चंद्र पूर्णिमा में प्रवेश करता हुआ गमन करता है । प्रथम अयन से दक्षिण भाग की तरफ से प्रवेश करता हुआ चंद्र सात अर्धमंडल में गमन करता है, वह सात अर्द्धमंडल हैं-दूसरा, चौथा, छट्ठा, आठवां, दसवां, बारहवां और चौदहवां । प्रथम अयन में गमन करता हुआ चंद्र पूर्वोक्त मंडलों में उत्तर भाग से आरंभ करके अन्तराभिमुख प्रवेश करके छह मंडल और सातवे मंडल का तेरह सडसठांश भाग में प्रवेश करके गमन करता है, यह छह मंडल हैं-तीसरा, पाँचवां, सातवां, नववां, ग्यारहवां और तेरहवां एवं पन्द्रहवें अर्ध-मंडल में वह तेरह सडसठांश भाग गमन करता है । चंद्र का यह पहला अयन पूर्ण हुआ ।

जो नक्षत्र अर्धमास हैं वह चंद्र अर्धमास नहीं हैं और जो चंद्र अर्धमास हैं वह नक्षत्र अर्धमास नहीं हैं फिर नाक्षत्र अर्धमास का चंद्र, चंद्र अर्धमास में तुल्य समय में कैसे गमन करता है ? एक अर्धमंडल में गमन करके चार-सठ्यंश भाग एवं एकतीश सडसठांश भाग से छेद करके नव भाग से गमन करता है । दूसरे अयन में गमन करता चंद्र पूर्व भाग से नीकलकर सात चोपन्न जाकर अन्य द्वारा चिर्ण मार्ग में गमन करता है, सात तेरह जाकर फिर अपने द्वारा चिर्ण मार्ग में गमन करता है, पश्चिम भाग से नीकलकर छ-चौप्पन जाकर दूसरे द्वारा चीर्ण मार्ग में और फिर छ तेरह जाकर स्वयंचीर्ण मार्ग में गमन करता है, दो तेरह जाकर कोई असामान्य मार्ग में गमन करता है । उस समय सर्व अभ्यंतर मंडल से नीकलकर सर्व बाह्यमंडल में गमन करता है तब दो तेरह जाकर चंद्र किसी असामान्य मार्ग में स्वयमेव प्रवेश करके गमन करता है । इस तरह दूसरा अयन पूर्ण होता है ।

चंद्र और नक्षत्र मास एक नहीं होते फिर भी तुल्य समय में चंद्र कैसे गमन करता है ? वह दो अर्द्धमंडल में गमन करते हुए आठ सडसठांश भाग अर्द्ध मंडल को इकतीस सडसठांश भाग से छेदकर अट्ठारहवे भाग में द्वितीय अयन में प्रवेश करता हुआ चंद्र पश्चिम भाग से प्रवेश करता हुआ अनन्तर बाह्य पश्चिम के अर्द्धमंडल के एकचालीस सडसठांश भाग जाकर स्वयं अथवा दूसरे द्वारा चीर्ण मार्ग में गमन करके तेरह सडसठांश भाग जाकर दूसरे द्वारा चीर्ण मार्ग में गमन करता है फिर तेरह सडसठांश भाग जा कर स्वयं या परिचर्ण मार्ग में गमन करता है, इस तरह अनन्तर ऐसे बाह्य पश्चिम मंडल को समाप्त करता है

तीसरे अयन में गया हुआ चंद्र पूर्व भाग से प्रवेश करते हुए बाह्य तृतीय पूर्व दिशा के अर्धमंडल को एक-

चालीश सडसठांश भाग जाकर स्वयं या दूसरे द्वारा चीर्ण मार्ग में गमन करता है फिर तेरह सडसठांश भाग जाकर दूसरे द्वारा चीर्ण मार्ग में गमन करता है, फिर तेरह सडसठांश भाग जाकर स्वयं या दूसरे द्वारा चीर्ण मार्ग में गमन करता है इतने में बाह्य तृतीयपूर्वीय मंडल समाप्त हो जाता है ।

वह तीसरे अयन को पूर्ण करके चंद्र पश्चिम भाग से बाह्य के चौथे पश्चिमी अर्द्धमंडल में आठ सडसठांश भाग के इकतीस सडसठांश भाग से छेदकर अट्ठारह भाग जाकर स्वयं या दूसरे द्वारा चीर्ण मंडल में गमन करता है यावत् पूर्वोक्त गणित से बाह्य चौथा पश्चिमी अर्धमंडल को समाप्त करता है । इस प्रकार चंद्रमास में चंद्र चोप्पन भाग के तेरह भाग में दो तेरह भाग जाकर परचीर्ण मंडल में गमन करके, तेरह तेरह भाग जाकर स्वयं चीर्ण मंडल में गमन करके यावत् इसी तरह प्रतिचीर्ण करता है, यह हुआ चन्द्र का अभिगमन-निष्क्रमण-वृद्धि-निर्वृद्धि इत्यादि।

प्राभृत-१३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–१४

सूत्र - ११५

हे भगवन् ! चंद्र का प्रकाश कब ज्यादा होता है ? शुक्लपक्ष में ज्यादा होता है । कृष्णपक्ष से शुक्लपक्ष में ज्यादा प्रकाश होता है । कृष्णपक्ष से शुक्लपक्ष में आता हुआ चन्द्र ४४२ मुहूर्त्त एवं एक मुहूर्त्त के छयालीस बासठांश भाग प्रकाश की क्रमशः वृद्धि करता है । शुक्लपक्ष की एकम में एक भाग की, दूज को दो भाग की... यावत्... पूर्णिमा को पन्द्रह भाग की प्रकाश में वृद्धि करता है, पूर्णिमा को पूर्ण प्रकाशित होता है । ज्योत्स्ना का यह प्रमाण परित संख्यातीत बताया है । शुक्लपक्ष की अपेक्षा से कृष्णपक्ष में ज्यादा अन्धकार होता है, शुक्लपक्ष के सम्बन्ध में जो कहा है वहीं गणित यहाँ भी समझ लेना । विशेष यह कि यहाँ क्रमशः अन्धकार की वृद्धि होती है और पन्द्रहवे दिन में अमावास्या के दिन संपूर्ण अन्धकार हो जाता है ।

प्राभृत-१४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–१५

सूत्र - ११६

हे भगवन् ! इन ज्योतिष्कों में शीघ्रगति कौन है ? चंद्र से सूर्य शीघ्रगति है, सूर्य से ग्रह, ग्रह से नक्षत्र और नक्षत्र से तारा शीघ्रगति होते हैं । सबसे अल्पगतिक चंद्र है, और सबसे शीघ्रगति ताराएं है । एक-एक मुहूर्त्त में गमन करता हुआ चंद्र, उन-उन मंडल सम्बन्धी परिधि के १७६८ भाग गमन करता हुआ मंडल के १०९८०० भाग करके गमन करता है । एक मुहूर्त्त में सूर्य उन-उन मंडल की परिधि के १८३० भागोंमें गमन करता हुआ उन मंडल के १०९८०० भाग छेद करके गति करता है । नक्षत्र १८३५ भाग करते हुए मंडल के १०९८०० भाग छेद करके गति करता है ।

सूत्र - ११७

जब चंद्र गति समापन्नक होता है, तब सूर्य भी गति समापन्नक होता है, उस समय सूर्य बासठ भाग अधिकता से गति करता है । इसी प्रकार से चंद्र से नक्षत्र की गति ६७ भाग अधिक होती है, सूर्य से नक्षत्र की गति पाँच भाग अधिक होती है । जब चंद्र गति समापन्नक होता है उस समय अभिजीत नक्षत्र जब गति करता है तो पूर्व दिशा से चन्द्र को नव मुहूर्त्त एवं दशवे मुहूर्त्त के २७/६७ भाग मुहूर्त्त से योग करता है, फिर योग परिवर्तन करके उसको छोड़ता है । उसके बाद श्रवण नक्षत्र तीस मुहूर्त्त पर्यन्त चंद्र से योग करके अनुपरिवर्तित होता है, इस प्रकार इसी अभिलाप से पन्द्रह मुहूर्त्त-तीस मुहूर्त्त-पीस्तालीश मुहूर्त्त को समझ लेना यावत् उत्तराषाढ़ा

जब चंद्र गति समापन्न होता है तब ग्रह भी गति समापन्नक होकर पूर्व दिशा से यथा सम्भव चंद्र से योग करके अनुपरिवर्तित होते हैं यावत् जोग रहित होते हैं । इसी प्रकार सूर्य के साथ पूर्व दिशा से अभिजीत नक्षत्र योग करके चार अहोरात्र एवं छह मुहूर्त्त साथ रहकर अनुपरिवर्तीत होता है, इसी प्रकार छ अहोरात्र एवं २१ मुहूर्त्त, तेरह अहोरात्र एवं १२ मुहूर्त्त, बीस अहोरात्र एवं तीन मुहूर्त्त को समझ लेना यावत् उत्तराषाढ़ा नक्षत्र सूर्य के साथ २० अहोरात्र एवं ३ मुहूर्त्त तक योग करके अनुपरिवर्तित होता है । सूर्य का ग्रह के साथ योग चंद्र समान समझना

सूत्र - ११८

नक्षत्र मास में चंद्र कितने मंडल में गति करता है ? वह तेरह मंडल एवं चौदहवे मंडल में ४४/६७ भाग पर्यन्त गति करता है, सूर्य तेरह मंडल और चौदहवें मंडल में छयालीस सडसठांश भाग पर्यन्त गति करता है, नक्षत्र तेरह मंडल एवं चौदह मंडल के अर्द्ध सडतालीश षडषठांश भाग पर्यन्त गति करता है । चन्द्र मास में इन सब की मंडलगति इस प्रकार है-चंद्र की सवा चौदह मंडल, सूर्य की पन्द्रह मंडल और नक्षत्र की चतुर्भाग न्यून पन्द्रह मंडल

ऋतु मासे में इन सबकी मंडल गति-चंद्र की १४ मंडल एवं पन्द्रहवे मंडल में ३०/६१ भाग, सूर्य की १५ मंडल और नक्षत्र की १५ मंडल एवं सोलहवे मंडल में ५/१२२ भाग है । आदित्य मासमें इन की मंडलगति-चन्द्र की चौदह मंडल एवं पन्द्रहवें मंडलमें ११/१५, सूर्य की सवा पन्द्रह मंडल और नक्षत्र की पन्द्रह मंडल एवं सोलहवे मंडल का ३५/१२० भाग है । अभिवर्धित मासमें इनकी गति-चंद्र की पन्द्रह मंडल एवं सोलहवे मंडल में ८३/१८६ अंश, सूर्य की त्रिभागन्यून सोलहवे मंडलमें और नक्षत्रों की १६ मंडल एवं सत्रह मंडल में ४७/१४८८ अंश होती है

सूत्र - ११९

हे भगवन् ! एक-एक अहोरात्र में चंद्र कितने मंडलोंमें गमन करता है ? ९१५ से अर्धमंडल को विभक्त करके इकतीस भाग न्यून ऐसे मंडल में गति करता है, सूर्य एक अर्द्ध मंडल में गति करता है और नक्षत्र एक अर्द्ध-मंडल एवं अर्द्धमंडल को ७३२ से छेदकर-दो भाग अधिक मंडल में गति करता है । एक-एक मंडल में चंद्र दो अहोरात्र एवं एक अहोरात्र को ४४२ से छेद करके-इकतीस भाग अधिक से गमन करता है, सूर्य दो अहोरात्र से और नक्षत्र दो अहोरात्र एवं एक अहोरात्र को ३६७ से छेद करके-दो भाग न्यून से गमन करता है । एक युग में चंद्र ८८४ मंडलों में, सूर्य ९१५ मंडल में और नक्षत्र १८३५ अर्धमंडलों में गति करता है । इस तरह गति का वर्णन हुआ ।

प्राभृत-१५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–१६

सूत्र - १२०

हे भगवन् ! ज्योत्सना स्वरूप कैसे कहा है ? चंद्रलेश्या और ज्योत्सना दोनों एकार्थक शब्द हैं, एक लक्षण वाले हैं । सूर्यलेश्या और आतप भी एकार्थक और एक लक्षणवाले हैं । अन्धकार और छाया भी एकार्थक और एक लक्षणवाले हैं ।

प्राभृत-१६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

------x-----x-----x-----x-----x-----

प्राभृत–१७

सूत्र - १२१

हे भगवन् ! इनका च्यवन और उपपात कैसे कहा है ? इस विषय में पच्चीस प्रतिपत्तियाँ हैं-एक कहता है कि अनुसमय में चंद्र और सूर्य अन्यत्र च्यवते हैं, अन्यत्र उत्पन्न होते हैं...यावत्... अनुउत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में अन्यत्र च्यवते हैं-अन्यत्र उत्पन्न होते हैं । समस्त पाठ प्राभृत-छह के अनुसार समझ लेना । भगवंत फरमाते हैं कि वे चंद्र-सूर्य देव महाऋद्धि-महायुक्ति-महाबल-महायश-महानुभाव-महासौख्यवाले तथा उत्तमवस्त्र-उत्तममाल्य-उत्तम आभरण के धारक और अव्यवच्छित नयानुसार स्व-स्व आयुष्य काल की समाप्ति होने पर ही पूर्वोत्पन्न का च्यवन होता है और नए उत्पन्न होते हैं ।

प्राभृत-१७-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

------x-----x-----x-----x-----x-----

प्राभृत-१८

सूत्र - १२२

हे भगवन् ! इन ज्योतिष्कों की ऊंचाई किस प्रकार कही है ? इस विषय में पच्चीस प्रतिपत्तियाँ हैं-एक कहता है-भूमि से ऊपर एक हजार योजन में सूर्य स्थित है, चंद्र १५०० योजन ऊर्ध्वस्थित है । दूसरा कहता है कि-सूर्य २००० योजन ऊर्ध्वस्थित है, चंद्र २५०० योजन ऊर्ध्वस्थित है । इसी तरह दूसरे मतवादीयों का कथन भी समझ लेना-सभी मत में एक-एक हजार योजन की वृद्धि कर लेना यावत् पच्चीसवाँ मतवादी कहता है कि-भूमि से सूर्य २५००० योजन ऊर्ध्वस्थित है और चंद्र २५५०० योजन ऊर्ध्वस्थित है ।

भगवंत इस विषय में फरमाते हैं कि-इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम भूमि भाग से ऊंचे ७९० योजन पर तारा विमान, ८०० योजन पर सूर्यविमान, ८८० योजन ऊंचे चंद्रविमान, ९०० योजन पर सर्वोपरी ताराविमान भ्रमण करते हैं। सर्वाधस्तन तारा विमान से ऊपर ११० योजन जाकर सर्वोपरी ताराविमान भ्रमण करता है, सूर्य विमान से ८० योजन ऊंचाई पर चंद्रविमान भ्रमण करता है, इसका पूर्व-पश्चिम व्यास विस्तार ११० योजन भ्रमण क्षेत्र है, तिर्छा असंख्यात योजन का भ्रमणक्षेत्र है ।

सूत्र - १२३

हे भगवन् ! चंद्र-सूर्य देवों के अधोभाग या ऊर्ध्वभाग के तारारूप देव लघु या तुल्य होते हैं ? वे तारारूप देवों का जिस प्रकार का तप-नियम-ब्रह्मचर्य आदि पूर्वभव में होते हैं, उस-उस प्रकार से वे ताराविमान के देव लघु अथवा तुल्य होते हैं । चंद्र-सूर्यदेवों के अधोभाग या ऊर्ध्वभाग स्थित तारा देवों के विषय में भी इसी प्रकार से लघुत्व या तुल्यत्व समझ लेना ।

सूत्र - १२४, १२५

एक-एक चंद्ररूप देवों का ग्रह-नक्षत्र एवं तारारूप परिवार कितना है ? एक-एक चंद्र देव का ग्रह परिवार ८८ का और नक्षत्र परिवार-२८ का होता है । एक-एक चंद्र का तारारूप परिवार ६६९०५ है ।

सूत्र - १२६

मेरु पर्वत की चारों तरफ ११२१ योजन को छोड़कर ज्योतिष्क देव भ्रमण करते हैं, लोकान्त से ज्योतिष्क देव का परिभ्रमण ११११ योजन है ।

सूत्र - १२७

जंबूद्वीप के मंडलमें नक्षत्र के सम्बन्ध में प्रश्न-अभिजीत नक्षत्र जंबूद्वीप के सर्वाभ्यन्तर मंडलमें गमन करता है, मूलनक्षत्र सर्वबाह्य मंडलमें, स्वातिनक्षत्र सर्वोपरी मंडलमें, भरणी नक्षत्र सर्वाधस्तन मंडलमें गमन करते हैं

सूत्र - १२८

चंद्रविमान किस प्रकार के संस्थानवाला है ? अर्धकपिट्ठ संस्थान वाला है, वातोद्धूत धजावाला, विविध मणिरत्नों से आश्चर्यकारी, यावत् प्रतिरूप है, इसी प्रकार सूर्य यावत् ताराविमान का वर्णन समझना

वह चंद्र विमान आयामविष्कम्भ से ५६ योजन एवं ६१ भाग प्रमाण है, व्यास को तीन गुना करने से इसकी परिधि होती है और बाहल्य २८ योजन एवं ६१ योजन भाग प्रमाण है, सूर्य विमान का आयामविष्कम्भ ४८ योजन एवं ६१ योजन भाग प्रमाण, परिधि आयामविष्कम्भ से तीन गुनी, बाहल्य से २४ योजन एवं एक योजन के ६१ भाग प्रमाण है । नक्षत्र विमान का आयाम विष्कम्भ एक कोस, परिधि उससे तीन गुनी और बाहल्य देढ़ कोस प्रमाण है । तारा विमान का आयामविष्कम्भ अर्धकोस, परिधि उनसे तीन गुनी और बाहल्य ५०० धनुष प्रमाण है । चंद्र विमान को १६००० देव वहन करते हैं, यथा-पूर्व दिशा में सिंह रूपधारी ४००० देव, दक्षिण में गज-रूपधारी ४००० देव, पश्चिम में वृषभरूपधारी ४००० देव और उत्तर में अश्वरूपधारी ४००० देव वहन करते हैं । सूर्य विमान के विषय में भी यहीं समझना, ग्रह विमान को ८००० देव वहन करते हैं-पूर्व से उत्तर तक दो-दो हजार, पूर्ववत् रूप से; नक्षत्र विमान को

४००० देव वहन करते हैं-पूर्व से उत्तर तक एक-एक हजार, पूर्ववत् रूप से ।

सूत्र - १२९

ज्योतिष्क देवों की गति का अल्पबहुत्व-चंद्र से सूर्य शीघ्रगति होता है, सूर्य से ग्रह, ग्रह से नक्षत्र और नक्षत्र से तारा शीघ्रगति होते हैं सर्व मंदगति चंद्र है, सर्व शीघ्रगति तारा है । तारारूप से नक्षत्र महर्द्धिक होते हैं; नक्षत्र से ग्रह, ग्रह से सूर्य, सूर्य से चंद्र महर्द्धिक हैं । सर्व अल्पर्द्धिक तारा है, सबसे महर्द्धिक चंद्र होते हैं ।

सूत्र - १३०

इस जंबूद्वीपमें तारा से तारा का अन्तर दो प्रकार का है-व्याघात युक्त अन्तर जघन्य से २६६ योजन और उत्कृष्ट १२२४२ योजन है; निर्व्याघात से यह अन्तर जघन्य से ५०० धनुष और उत्कृष्ट से अर्धयोजन है ।

सूत्र - १३१

ज्योतिष्केन्द्र चंद्र की चार अग्रमहिषीयाँ हैं-चंद्रप्रभा, ज्योत्सनाभा, अर्चिमालिनी एवं प्रभंकरा; एक एक पट्टराणी का चार-चार हजार देवी का परिवार है, वह एक-एक देवी अपने अपने ४००० रूपों की विकुर्वणा करती हैं इस तरह १६००० देवियों की एक त्रुटीक होती है । वह चंद्र चंद्रावतंसक विमान में सुधर्मासभा में उन देवियों के साथ भोग भोगते हुए विचरण नहीं कर सकता, क्योंकि सुधर्मासभा में माणवक चैत्यस्तम्भ में वज्रमय शिके में गोलाकार डीब्बे में बहुत से जिनसक्थी होते हैं, वह ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चंद्र एवं उनके बहुत से देव-देवियों के लिए अर्चनीय, पूजनीय, वंदनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय, कल्याण-मंगल-दैवत-चैत्यभूत और पर्यूपासनीय है ।

ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चंद्र चंद्रावतंसक विमान में सुधर्मासभा में ४००० सामानिक देव, सपरिवार चार अग्रमहिषीयाँ, तीन पर्षदा, सात सेना, सात सेनाधिपति, १६००० आत्मरक्षक देव एवं अन्य भी बहुत से देव-देवीओं के साथ महत् नाट्य-गीत-वाजिंत्र-तंत्री-तल-ताल-तुडित धन मृदंग के ध्वनि से युक्त होकर दिव्य भोग भोगते हुए विचरण करता है, मैथुन नहीं करता है । ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष राज सूर्य की चार अग्रमहिषीयाँ है-सूरप्रभा, आतपा, अर्चिमाली और प्रभंकरा, शेष कथन चंद्र के समान है ।

सूत्र - १३२

ज्योतिष्क देवों की स्थिति जघन्य से पल्योपम का आठवा भाग, उत्कृष्ट से एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम है । ज्योतिष्क देवी की जघन्य स्थिति वहीं है, उत्कृष्ट ५०००० वर्षासाधिक अर्ध पल्योपम है । चंद्रविमान देव की जघन्य स्थिति एक पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है। चंद्रविमान देवी की जघन्य स्थिति औघिक के समान है । सूर्य विमान के देवों की स्थिति चंद्र देवों के समान है, सूर्यविमान के देवी की जघन्य स्थिति औघिक के समान और उत्कृष्ट स्थिति ५०० वर्ष अधिक अर्धपल्योपम है ।

ग्रहविमान के देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट पल्योपम की है; ग्रहविमान के देवी की जघन्य वही है, उत्कृष्ट अर्धपल्योपम की है । नक्षत्र विमान के देवों की स्थिति ग्रहविमान की देवी के समान है और नक्षत्र देवी की स्थिति जघन्य से पल्योपम का आठवा भाग और उत्कृष्ट से पल्योपम का चौथा भाग है । ताराविमान के देवों की स्थिति नक्षत्र देवी के समान है और उनकी देवी की स्थिति जघन्य से पल्योपम का आठवा भाग और उत्कृष्ट से साधिक पल्योपम का आठवा भाग प्रमाण है ।

सूत्र - १३३

ज्योतिष्क देवों का अल्पबहुत्व-चंद्र और सूर्य दोनों तुल्य हैं और सबसे अल्प हैं, उनसे नक्षत्र संख्यातगुणे हैं, उनसे ग्रह संख्यात गुणे हैं, उनसे तारा संख्यात गुणे हैं ।

प्राभृत-१८-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–१९

सूत्र - १३४

कितने चंद्र-सूर्य सर्वलोक को प्रकाशित-उद्योतीत तापीत और प्रभासीत करते हैं । इस विषय में बारह प्रतिपत्तियाँ हैं-सर्वलोक को प्रकाशित यावत् प्रभासीत करनेवाले चंद्र और सूर्य-(१) एक-एक हैं, (२) तीन-तीन हैं, (३) साडेतीन-साडेतीन हैं, (४) सात-सात हैं, (५) दश-दश हैं, (६) बारह-बारह हैं, (७) ४२-४२ हैं, (८) ७२-७२ हैं, (९) १४२-१४२ हैं, (१०) १७२-१७१ हैं, (११) १०४२-१०४२ हैं, (१२) १०७२-१०७२ हैं ।

भगवंत फरमाते हैं कि इस जंबूद्वीप में दो चंद्र प्रभासीत होते थे-हुए हैं और होंगे । दो सूर्य तापीत करते थे-करते हैं और करेंगे । ५६ नक्षत्र योग करते थे-करते हैं और करेंगे । १७६ ग्रह भ्रमण करते थे-करते हैं और करेंगे । १३३९५० कोड़ाकोड़ी तारागण शोभते थे-शोभते हैं और शोभित होंगे ।

सूत्र - १३५, १३६

जंबूद्वीप में भ्रमण करनेवाले दो चंद्र, दो सूर्य, छप्पन नक्षत्र और १७६ ग्रह हैं । तथा-१३३९५० कोड़ाकोड़ी तारागण हैं ।

सूत्र - १३७, १३८

इस जंबूद्वीप को लवण नामक समुद्र घीरे हुए है, वृत्त एवं वलयाकार है, समचक्रवाल संस्थित है उसका चक्रवाल विष्कम्भ दो लाख योजन है, परिधि १५८११३९ योजन से किंचित् न्यून है । इस लवणसमुद्र में चार चंद्र प्रभासित हुए थे-होते हैं और होंगे, चार सूर्य तापित करते थे-करते हैं और करेंगे, ११२ नक्षत्र योग करते थे-करते हैं और करेंगे, ३५२ महाग्रह भ्रमण करते थे-करते हैं और करेंगे, २३७९०० कोड़ाकोड़ी तारागण शोभित होते थे-होते हैं और होंगे । १५८११३९ योजन से किंचित् न्यून लवणसमुद्र का परिक्षेप है ।

सूत्र - १३९, १४०

लवणसमुद्र में चार चंद्र, चार सूर्य, ११२ नक्षत्र और ३५२ महाग्रह हैं । २६७९०० कोड़ाकोड़ी तारागण लवणसमुद्र में हैं ।

सूत्र - १४१-१४३

उस लवणसमुद्र को धातकीखण्ड नामक वृत्त-वलयाकार यावत् समचक्रवाल संस्थित द्वीप चारों और से घेर कर रहा हुआ है । यह धातकी खण्ड का चार लाख योजन चक्रवाल विष्कम्भ और ४११०९६१ परिधि है । धातकी खण्ड में बारह चंद्र प्रभासित होते थे-होते हैं और होंगे, बारह सूर्य इसको तापित करते थे-करते हैं और करेंगे, ३३६ नक्षत्र योग करते थे-करते हैं और करेंगे, १०५६ महाग्रह भ्रमण करते थे-करते हैं और करेंगे । धातकी खण्ड में ८,३०,७०० कोड़ाकोड़ी तारागण एक चंद्र का परिवार है ।

धातकी खण्ड परिक्षेप से किंचित् न्यून ४११०९६१ योजन का है ।

सूत्र - १४४, १४५

१२-चंद्र, १२-सूर्य, ३३६ नक्षत्र एवं १०५६ नक्षत्र धातकीखण्ड में हैं । ८३०७०० कोड़ाकोड़ी तारागण धातकीखण्ड में हैं ।

सूत्र - १४६

कालोद नामक समुद्र जो वृत्त, वलयाकार एवं समचक्रविष्कम्भ वाला है वह चारों ओर से धातकीखण्ड को घीरे हुए रहा है । उसका चक्रवाल विष्कम्भ आठ लाख योजन और परिधि ९१७०६०५ योजन से किंचित् अधिक है। कालोद समुद्र में ४२ चंद्र प्रभासित होते थे-होते हैं और होंगे, ४२-सूर्य तापित करते थे-करते हैं और करेंगे, ११७६ नक्षत्रों ने योग किया था-करते हैं और करेंगे, ३६९६ महाग्रह भ्रमण करते थे-करते हैं और करेंगे, २८१२९५० कोड़ाकोड़ी तारागण शोभित होते थे-होते हैं और होंगे ।

सूत्र - १४७-१५०

कालोद समुद्र की परिधि साधिक ९१७०६०५ योजन है । कालोद समुद्र में ४२-चंद्र, ४२-सूर्य दिप्त हैं, वह सम्बद्धलेश्या से भ्रमण करते हैं । कालोद समुद्र में ११७६ नक्षत्र एवं ३६९६ महाग्रह हैं । उसमें २८,१२९५० कोड़ाकोड़ी तारागण हैं ।

सूत्र - १५१-१५५

पुष्करवर नामका वृत्त-वलयाकार यावत् समचक्रवाल संस्थित द्वीप है कालोद समुद्र को चारों ओर से घीरे हुए है । पुष्करवर द्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ सोलह लाख योजन है और उसकी परिधि १,९२,४९,८४९ योजन है। पुष्करवरद्वीप में १४४ चंद्र प्रभासित हुए हैं-होते हैं और होंगे, १४४ सूर्य तापीत करते थे-करते हैं और करेंगे, ४०३२ नक्षत्रों ने योग किया था-करते हैं और करेंगे, १२६७२ महाग्रह भ्रमण करते थे-करते हैं और करेंगे, ९६४४४०० कोड़ाकोड़ी तारागण शोभित होते थे-होते हैं और होंगे ।

पुष्करवर द्वीप का परिक्षेप १९२४९८४९ योजन है । पुष्करवर द्वीप में १४४ चंद्र और १४४ सूर्य भ्रमण करते हैं एवं प्रकाश करते हैं । उसमें ४०३२ नक्षत्र एवं १२६७२ महाग्रह हैं । ९६४४४०० कोड़ाकोड़ी तारागण पुष्करवर द्वीप में हैं ।

सूत्र - १५६

इस पुष्करवर द्वीप के बहुमध्य देश भाग में मानुषोत्तर नामक पर्वत है, वृत्त एवं वलयाकार है, जिसके द्वारा पुष्करवर द्वीप के एक समान दो विभाग होते हैं-अभ्यन्तर पुष्करावर्ध और बाह्य पुष्करावर्ध । अभ्यन्तर पुष्करावर्ध द्वीप समचक्रवाल संस्थित है, उसका चक्रवाल विष्कम्भ आठ लाख योजन है, परिधि १४२३०२४९ प्रमाण है, उसमें ७२ चंद्र प्रभासित हुए थे-होते हैं और होंगे, ७२-सूर्य तपे थे-तपते हैं और तपेंगे, २०१६ नक्षत्रों ने योग किया था-करते हैं और करेंगे, ६३३६ महाग्रह भ्रमण करते थे-करते हैं और करेंगे, ४८२२०० कोड़ाकोड़ी तारागण शोभित हुए थे-होते हैं और होंगे ।

सूत्र - १५७, १५८

अभ्यंतर पुष्करार्ध का विष्कम्भ आठ लाख योजन है और पूरे मनुष्य क्षेत्र का विष्कम्भ ४५ लाख योजन है, मनुष्य क्षेत्र का परिक्षेप १००४२२४९ योजन है ।

सूत्र - १५९-१६१

अर्ध पुष्करवरद्वीप में ७२-चंद्र, ७२-सूर्य दिप्त हैं, विचरण करते हैं और इस द्वीप को प्रकाशित करते हैं । इस में ६३३६ महाग्रह और २०१६ नक्षत्र हैं । पुष्करवरार्ध में ४८२२२०० कोड़ाकोड़ी तारागण हैं ।

सूत्र - १६२-१६४

सकल मनुष्यलोक को १३२-चंद्र और १३२-सूर्य प्रकाशित करके भ्रमण करते हैं । तथा- इसमें ११६१६ महाग्रह तथा ३६९६ नक्षत्र हैं । इसमें ८८४०७०० कोड़ाकोड़ी तारागण है ।

सूत्र - १६५

मनुष्यलोक में पूर्वोक्त तारागण हैं और मनुष्यलोक के बाहर असंख्यात तारागण जिनेश्वर भगवंत ने प्रतिपादित किये हैं ।

सूत्र - १६६

मनुष्यलोक में स्थित तारागण का संस्थान कलंबपुष्प के समान बताया है ।

सूत्र - १६७

सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र और तारागण मनुष्यलोक में प्ररूपित किये हैं, उसके नामगोत्र प्राकृत पुरुषों ने बताए नहीं है ।

सूत्र - १६८

दो चंद्र और दो सूर्य की एक पिटक होती है, ऐसी छासठ पिटक मनुष्यलोक में कही गई है ।

सूत्र - १६९

एक एक पिटक में छप्पन नक्षत्र होते हैं, ऐसी छासठ पिटक मनुष्यलोक में बताई गई है ।

सूत्र - १७०

एक एक पिटक में १७६ ग्रह होते हैं, ऐसी छासठ पिटक मनुष्य लोक में फरमाते हैं ।

सूत्र - १७१

दो सूर्य, दो चंद्र की ऐसी चार पंक्तियाँ होती हैं, मनुष्य लोक में ऐसी छासठ-छासठ पंक्तियाँ होती है ।

सूत्र - १७२

छप्पन नक्षत्र की एक पंक्ति, ऐसी छासठ-छासठ पंक्ति मनुष्यलोक में होती है ।

सूत्र - १७३

१७६ ग्रह की एक पंक्ति ऐसी छासठ-छासठ पंक्ति मनुष्यलोक में होती है ।

सूत्र - १७४

चंद्र, सूर्य, ग्रहगण अनवस्थित योगवाले हैं और ये सब मेरुपर्वत को प्रदक्षिणावर्त्त से भ्रमण करते हैं

सूत्र - १७५

नक्षत्र और तारागण अवस्थित मंडलवाले हैं, वे भी प्रदक्षिणावर्त से मेरुपर्वत का भ्रमण करते हैं ।

सूत्र - १७६

सूर्य और चंद्र का ऊर्ध्व या अधो में संक्रमण नहीं होता, वे मंडल में सर्वाभ्यन्तर-सर्वबाह्य और तीर्छा संक्रमण करते हैं ।

सूत्र - १७७

सूर्य, चंद्र, नक्षत्र और महाग्रह के भ्रमण विशेष से मनुष्य के सुख-दुःख होते हैं ।

सूत्र - १७८

सूर्य-चंद्र के सर्वबाह्य मंडल से सर्वाभ्यन्तर मंडल में प्रवेश के समय नित्य तापक्षेत्र की वृद्धि होती है और उनके निष्क्रमण से क्रमशः तापक्षेत्र में हानि होती है ।

सूत्र - १७९

सूर्य-चंद्र का तापक्षेत्र मार्ग कलंबपुष्प के समान है, अंदर से संकुचित और बाहर से विस्तृत होता है ।

सूत्र - १८०

चंद्र की वृद्धि और हानि कैसे होती है ? चंद्र किस अनुभाव से कृष्ण या प्रकाशवाला होता है ?

सूत्र - १८१

कृष्णराहु का विमान अविरहित-नित्य चंद्र के साथ होता है, वह चंद्र विमान से चार अंगुल नीचे विचरण करता है ।

सूत्र - १८२

शुक्लपक्ष में जब चंद्र की वृद्धि होती है, तब एक एक दिवस में बासठ-बासठ भाग प्रमाण से चंद्र उस का क्षय करता है ।

सूत्र - १८३

पन्द्रह भाग से पन्द्रहवे दिन में चंद्र उस का वरण करता है और पन्द्रह भाग से पुनः उस का अवक्रम होता है।

सूत्र - १८४

इस तरह चंद्र की वृद्धि एवं हानि होती है, इसी अनुभाव से चंद्र काला या प्रकाशवान होता है ।

सूत्र - १८५

मनुष्यक्षेत्र के अन्दर उत्पन्न हुए चंद्र-सूर्य-ग्रहगणादि पंचविध ज्योतिष्क भ्रमणशील होते हैं ।

सूत्र - १८६

मनुष्य क्षेत्र के बाहिर के चंद्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र तारागण भ्रमणशील नहीं होते, वे अवस्थित होते हैं ।

सूत्र - १८७

इस प्रकार जंबूद्वीपमें दो चंद्र, दो सूर्य उनसे दुगुने चार-चार चंद्र-सूर्य लवणसमुद्र में, उनसे तीगुने चंद्र-सूर्य घातकीघण्ड में हैं ।

सूत्र - १८८

जंबूद्वीप में दो, लवणसमुद्र में चार और घातकीखण्ड में बारह चंद्र होते हैं ।

सूत्र - १८९

घातकी खण्ड से आगे-आगे चंद्र का प्रमाण तीनगुना एवं पूर्व के चंद्र को मिलाकर होता है । (जैसे कि- कालोदसमुद्र है, घातकी खण्ड के बारह चंद्र को तीनगुना करने से छत्तीस हुए उनमें पूर्व के लवणसमुद्र के चार और जंबूद्वीप के दो चंद्र मिलाकर बयालीस हुए) ।

सूत्र - १९०

यदि नक्षत्र, ग्रह और तारागण का प्रमाण जानना है तो उस चंद्र से गुणित करने से वे भी प्राप्त हो सकते हैं।

सूत्र - १९१

मनुष्य क्षेत्र के बाहिर चंद्र-सूर्य अवस्थित प्रकाशवाले होते हैं, चंद्र अभिजीत नक्षत्र से और सूर्य पुष्य नक्षत्र से युक्त रहता है ।

सूत्र - १९२

चंद्र से सूर्य और सूर्य से चंद्र का अन्तर ५०००० योजन है ।

सूत्र - १९३

सूर्य से सूर्य और चंद्र से चंद्र का अन्तर मनुष्य क्षेत्र के बाहर एक लाख योजन का होता है ।

सूत्र - १९४

मनुष्यलोक के बाहर चंद्र-सूर्य से एवं सूर्य-चंद्र से अन्तरित होता है, उनकी लेश्या आश्चर्यकारी-शुभ और मन्द होती है ।

सूत्र - १९५, १९६

एक चंद्र के परिवार में अठ्ठासी ग्रह और अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं, अब मैं तारागण का प्रमाण कहता हूँ - एक चंद्र के परिवार में ६६९०५ कोड़ाकोड़ी तारागण होते हैं ।

सूत्र - १९७

मनुष्य क्षेत्र के अन्तर्गत् जो चंद्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारागण हैं, वह क्या ऊर्ध्वोपपन्न हैं ? कल्पोपपन्न ? विमानोपपन्न है ? अथवा चारोपपन्न है ? वे देव विमानोपपन्न एवं चारोपपन्न है, वे चारस्थितिक नहीं होते किन्तु गतिरतिक-गतिसमापन्नक-ऊर्ध्वमुखीकलंबपुष्प संस्थानवाले हजारो योजन तापक्षेत्रवाले, बाह्य पर्षदा से विकुर्वित हजारो संख्या के वाद्य-तंत्री-ताल-त्रुटित इत्यादि ध्वनि से युक्त, उत्कृष्ट सिंहनाद-मधुरकलरव, स्वच्छ यावत् पर्वत-राज मेरुपर्वत को प्रदक्षिणावर्त्त से भ्रमण करते हुए विचरण करते हैं । इन्द्र के विरह में चार-पाँच सामानिक देव इन्द्रस्थान को प्राप्त करके विचरते हैं, वह इन्द्रस्थान जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट छ मास तक विरहित रहता है

मनुष्यक्षेत्र की बाहिर जो चंद्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्क देव हैं, वे भी विमानोपपन्नक एवं चार स्थितिक होते हैं, किन्तु वे गतिरतिक या गतिसमापन्नक नहीं होते, पक्व इंट के आकार के समान संस्थित, लाखों योजन के तापक्षेत्रवाले, लाखों संख्या में बाहिर विकुर्वित पर्षदा यावत् दिव्यध्वनि से युक्त भोग भोगते हुए विचरण करते हैं । वे शुक्ललेश्या-मन्दलेश्या-आश्चर्यकारी लेश्या आदि से अन्योन्य समवगाढ होकर, कूड की तरह स्थानस्थित होकर उस प्रदेश को सर्व तरफ से प्रकाशित, उद्योतीत, तापीत एवं अवभासित करते हैं । इन्द्र के विरह में पूर्ववत् कथन समझ लेना ।

सूत्र - १९८

पुष्करोद नामक समुद्र वृत्त एवं वलयाकार है, वह चारो तरफ से पुष्करवर द्वीप को घीरे हुए स्थित है। समचक्रवाल संस्थित है, उसका चक्रवाल विष्कम्भ संख्यात हजार योजन का है, परिधि भी संख्यात हजार योजन की है । उस पुष्करोद समुद्र में संख्यात चंद्र यावत् संख्यात तारागण कोड़ाकोड़ी शोभित हुए थे-होते हैं और होंगे । इसी अभिलाप से वरुणवरद्वीप, वरुणवरसमुद्र, खीखरद्वीप, खीखरसमुद्र, घृतवरद्वीप, घृतवरसमुद्र, खोदवरद्वीप, खोदोदसमुद्र, नंदीश्वरद्वीप, नंदीश्वरसमुद्र, अरुणद्वीप, अरुणोदसमुद्र यावत् कुण्डलवरावभास समुद्र समझ लेना ।

कुण्डलवरावभास समुद्र को घीरकर रुचक नामक वृत्त-वलयाकार एवं समचक्रवाल द्वीप है, उसका आयामविष्कम्भ और परिधि दोनों असंख्य हजार योजन के हैं । उसमें असंख्य चंद्र यावत् असंख्य तारागण कोड़ा कोड़ी समाविष्ट हैं । इसी प्रकार रुचकसमुद्र, रुचकवरद्वीप, रुचकवरसमुद्र, रुचकवरावभास द्वीप, रुचकवरावभास समुद्र यावत् सूखरावभास द्वीप तथा सूरवरावभास समुद्र को समझ लेना । सूरवरावभास समुद्र, देव नामक द्वीप से चारों तरफ से घीरा हुआ है, यह देवद्वीप वृत्त-वलयाकार एवं समचक्रवाल संस्थित हैं, चक्रवाल विष्कम्भ से एवं परिधि से असंख्य हजार योजन प्रमाण है । इस देवद्वीप में असंख्येय चंद्र यावत् असंख्येय तारागण स्थित हैं । इसी प्रकार से देवोदसमुद्र यावत् स्वयंभूरमण समुद्र को समझ लेना ।

प्राभृत-१९-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्राभृत–२०

सूत्र - १९९

हे भगवंत ! चंद्रादि का अनुभाव किस प्रकार से है ? इस विषय में दो प्रतिपत्तियाँ है । एक कहता है कि चंद्र-सूर्य जीवरूप नहीं है, अजीवरूप है; घनरूप नहीं है, सुषिररूप है, श्रेष्ठ शरीरधारी नहीं, किन्तु कलेवररूप है, उनको उत्थान-कर्म-बल-वीर्य या पुरिषकार पराक्रम नहीं है, उनमें विद्युत, अशनिपात ध्वनि नहीं है, लेकिन उनके नीचे बादर वायुकाय संमूर्च्छित होता है और वहीं विद्युत यावत् ध्वनि उत्पन्न करता है । कोई दूसरा इस से संपूर्ण विपरीत मतवाला है-वह कहता है चंद्र-सूर्य जीवरूप यावत् पुरुष पराक्रम से युक्त हैं, वह विद्युत यावत् ध्वनि उत्पन्न करता है ।

भगवंत फरमाते हैं कि चंद्र-सूर्य के देव महाऋद्धिक यावत् महानुभाग है, उत्तम वस्त्र-माल्य-आभरण के धारक है, अव्यवच्छित नय से अपनी स्वाभाविक आयु पूर्ण करके पूर्वोत्पन्न देव का च्यवन होता है और अन्य उत्पन्न होता है ।

सूत्र - २००

हे भगवन् ! राहु की क्रिया कैसे प्रतिपादित की है ? इस विषय में दो प्रतिपत्तियाँ हैं-एक कहता है कि-राहु नामक देव चंद्र-सूर्य को ग्रसित करता है, दूसरा कहता है कि राहु नामक कोई देव विशेष है ही नहीं जो चंद्र-सूर्य को ग्रसित करता है । पहले मतवाला का कथन यह है कि-चंद्र या सूर्य को ग्रहण करता हुआ कभी अधोभाग को ग्रहण करके अधोभाग से ही छोड़ देता है, उपर से ग्रहण करके अधो भाग से छोड़ता है, कभी उपर से ग्रहण करके उपर से ही छोड़ देता है, दायिनी ओर से ग्रहण करके दायिनी ओर से छोड़ता है तो कभी बायीं तरफ से ग्रहण करके बांयी तरफ से छोड़ देता है इत्यादि ।

जो मतवादी यह कहता है कि राहु द्वारा चंद्र-सूर्य ग्रसित होते ही नहीं, उनके मतानुसार-पन्द्रह प्रकार के कृष्णवर्णवाले पुद्गल हैं-शृंगाटक, जटिलक, क्षारक, क्षत, अंजन, खंजन, शीतल, हिमशीतल, कैलास, अरुणाभ, परिज्जय, नभसूर्य, कपिल और पिंगल राहु । जब यह पन्द्रह समस्त पुद्गल सदा चंद्र या सूर्य की लेश्या को अनुबद्ध करके भ्रमण करते हैं तब मनुष्य यह कहते है कि राहु ने चंद्र या सूर्य को ग्रसित किया है । जब यह पुद्गल सूर्य या चंद्र की लेश्या को ग्रसित नहीं करते हुए भ्रमण करते हैं तब मनुष्य कहते हैं कि सूर्य या चंद्र द्वारा राहु ग्रसित हुआ है ।

भगवंत फरमाते हैं कि-राहुदेव महाऋद्धिवाला यावत् उत्तम आभरणधारी है, राहुदेव के नव नाम है-शृंगाटक, जटिलक, क्षतक, क्षरक, दर्दर, मगर, मत्स्य, कस्यप और कृष्णसर्प । राहुदेव का विमान पाँच वर्णवाला है-कृष्ण, नील, रक्त, पीला और श्वेत । काला राहुविमान खंजन वर्ण की आभावाला है, नीला राहुविमान लीले तुंबड़े के वर्ण का, रक्त राहुविमान मंजीठ वर्ण की आभावाला, पीला विमान हलदर की आभावाला और श्वेत राहुविमान तेजपुंज सदृश होता है

जिस वक्त राहुदेव विमान आते-जाते-विकुर्वणा करते-परिचारणा करते चंद्र या सूर्य की लेश्या को पूर्व से आवरित करके पश्चिम में छोड़ता है, तब पूर्व से चंद्र या सूर्य दिखते हैं और पश्चिम में राहु दिखाई देता है, जब दक्षिण से आवरित करके उत्तर में छोड़ता है, तब दक्षिण से चंद्र-सूर्य दिखाई देते हैं और उत्तर में राहु दिखाई देता है। इसी अभिलाप से इसी प्रकार पश्चिम, उत्तर, ईशान, अग्नि, नैऋत्य और वायव्य में भी समझ लेना चाहिए । इस तरह जब राहु चंद्र या सूर्य की लेश्या को आवरीत करता है, तब मनुष्य कहते हैं कि राहुने चंद्र या सूर्य का ग्रहण किया-ग्रहण किया । जब इस तरह राहु एक पार्श्व से चंद्र या सूर्य की लेश्या को आवरीत करता है तब लोग कहते है कि राहुने चंद्र या सूर्य की कुक्षिका विदारण किया-विदारण किया । जब राहु इस तरह चंद्र या सूर्य की लेश्या को आवरीत करके छोड़ देता है, तब लोग कहते हैं कि राहुने चंद्र या सूर्य का वमन किया-वमन किया । इस तरह जब राहु चंद्र या सूर्य लेश्या को आवरीत करके बीचोबीच से नीकलता है तब लोग कहते हैं कि राहुने चंद्र या सूर्य को मध्य से विदारीत किया है । इसी तरह जब राहु चारों ओर से चंद्र या सूर्य को आवरीत करता है तब लोग कहते हैं कि राहुने चंद्र-सूर्य को ग्रसित किया ।

राहु दो प्रकार के हैं-ध्रुवराहु और पर्वराहु । जो ध्रुवराहु है, वह कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से आरंभ कर के अपने पन्द्रहवे भाग से चंद्र की पन्द्रहवा भाग की लेश्या को एक एक दिन के क्रम से आच्छादित करता है और पूर्णिमा एवं अमावास्या के पर्वकालमें क्रमानुसार चंद्र या सूर्य को ग्रसित करता है; जो पर्वराहु है वह जघन्य से छह मास और

उत्कृष्ट से बयालीस मास में चंद्र को अडतालीस मास में सूर्य को ग्रसित करता है ।

सूत्र - २०१

हे भगवन् ! चंद्र को शशी क्युं कहते हैं ? ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चंद्र के मृग चिन्हवाले विमान में कान्त-देव, कान्तदेवीयाँ, कान्त आसन, शयन, स्तम्भ, उपकरण आदि होते हैं, चंद्र स्वयं सुरूप आकृतिवाला, कांतिवान्, लावण्ययुक्त और सौभाग्य पूर्ण होता है इसलिए 'चंद्र-शशी' ऐसा कहा जाता है ।

हे भगवन् ! सूर्य को आदित्य क्युं कहा जाता है ? सूर्य की आदि के काल से समय, आवलिका, स्तोक यावत् उत्सर्पिणी अवसर्पिणी की गणना होती है इसलिए सूर्य-आदित्य कहलाता है ।

सूत्र - २०२

ज्योतिषेन्द्र ज्योतिष राज चंद्र की कितनी अग्रमहिषीयाँ है ? चार-चंद्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली, प्रभंकरा इत्यादि कथन पूर्ववत् जान लेना । सूर्य का कथन भी पूर्ववत् । वह चंद्र-सूर्य कैसे कामभोग को अनुभवते हुए विचरण करते हैं ? कोई पुरुष यौवन के आरम्भकाल वाले बल से युक्त, सदृश पत्नी के साथ तुर्त में विवाहीत हुआ हो, धन का अर्थी वह पुरुष सोलह साल परदेश गमन करके धन प्राप्त करके अपने घर में लौटा हो, उसके बाद बलिकर्म-कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त आदि करके शुद्ध वस्त्र, अल्प लेकिन मूल्यवान् आभरण को धारण किये हुए, अट्ठारह प्रकार के व्यंजन से युक्त, स्थालीपाक शुद्ध भोजन करके, उत्तम ऐसे मूल्यवान् वासगृह में प्रवेश करता है;

वहाँ उत्तमोत्तम धूप-सुगंध मघमघायमान हो, शय्या भी कोमल और दोनों तरफ से उन्नत हो इत्यादि, अपनी सुन्दर पत्नी के साथ शृंगार आदि से युक्त होकर हास्य-विलास-चेष्टा-आलाप-संलाप-विलास इत्यादि सहित अनुरक्त होकर, अविरत मनोनुकूल होकर, अन्यत्र कहीं पर मन न लगाते हुए, केवल इष्ट शब्दादि पंचविध ऐसे मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का अनुभव करता हुआ विचरता है, उस समय जो सुखशाता का अनुभव करता है, उनसे अनंतगुण विशिष्टतर व्यंतर देवों के कामभोग होते हैं ।

व्यंतरदेवो के कामभोग से अनंतगुण विशिष्टतर असुरेन्द्र को छोड़कर शेष भवनपतिदेवों के काम भोग होते हैं, भवनवासी देवों से अनंतगुण विशिष्टतर असुरकुमार इन्द्ररूप देवों के कामभोग होते हैं, उनसे अनंतगुण विशिष्टतर ग्रहगण-नक्षत्र और तारारूप देवों के कामभोग होते हैं, उनसे विशिष्टतर चंद्र-सूर्य देवों के कामभोग होते हैं । इस प्रकार के कामभोगों का चंद्र-सूर्य ज्योतिषेन्द्र अनुभव करके विचरण करते हैं ।

सूत्र - २०३

निश्चय से यह अठ्ठासी महाग्रह कहे हैं-अंगारक, विकालक, लोहिताक्ष, शनैश्चर, आधुनिक, प्राधूणिक, कण, कणक, कणकणक, कणवितानक, कणसंताणक, सोम, सहित, आश्वासन, कायोपग, कर्बटक, अजकरक, दुन्दुभक, शंख, शंखनाभ, कंस, कंसनाभ, कंसवर्णाभ, नील, नीलावभास, रूप्य, रूप्यभास, भस्म, भस्मराशी, तिल, तिलपुष्पवर्ण, दक, दकवर्ण, काक, काकन्ध, इन्द्राग्नि, धूमकेतु, हरि, पिंगलक, बुध, शुक्र, बृहस्पति, राहु, अगस्ती, माणवक, काश, स्पर्श, धूर, प्रमुख, विकट, विसन्धिल्प, निजल्ल, प्रजल्ल, जटितायल, अरुण, अग्निल, काल, महाकाल, स्वस्तिक, सौवस्तिक, वर्धमानक, प्रलम्ब, नित्यालोक, नित्युद्योत, स्वयंप्रभ, अवभास, श्रेयस्कर, क्षेमंकर, आभंकर, प्रभंकर, अरज, विरज, अशोक, वितशोक, विमल, वितप्त, विवस्त्र, विशाल, शाल, सुव्रत, अनिवर्त्ति, एकजटी, दुजटी, करकरिक, राजर्गल, पुष्पकेतु और भावकेतु ।

सूत्र - २०४ से २११

यह संग्रहणी गाथाएं हैं । इन गाथाओं में पूर्वोक्त अठ्ठासी महाग्रहों के नाम-अंगारक यावत् पुष्पकेतु तक बताये हैं । इसीलिए इन गाथाओं के अर्थ प्रगट न करके हमने पुनरुक्तिका त्याग किया है ।

प्राभृत-२०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

सूत्र - २१२

यह पूर्वकथित प्रकार से प्रकृतार्थ ऐसे एवं अभव्यजनो के हृदय से दुर्लभ ऐसी भगवती ज्योतिषराज प्रज्ञप्ति का किर्तन किया है ।

सूत्र - २१३

इसको ग्रहण करके जड-गौरवयुक्त-मानी-प्रत्यनीक-अबहुश्रुत को यह प्रज्ञप्ति का ज्ञान देना नहीं चाहिए, इससे विपरीतजनों को यथा-सरल यावत् श्रुतवान् को देना चाहिए ।

सूत्र - २१४

श्रद्धा-धृति-धैर्य-उत्साह-उत्थान-बल-वीर्य-पराक्रम से युक्त होकर इसकी शिक्षा प्राप्त करनेवाले भी अयोग्य हो तो उनको इस प्रज्ञप्ति की प्ररूपणा नहीं करनी चाहिए । यथा-

सूत्र - २१५

जो प्रवचन, कुल, गण या संघ से बाहर निकाले गए हो, ज्ञान-विनय से हीन हो, अरिहंत-गणधर और स्थवीर की मर्यादा से रहित हो-(ऐसे को यह प्रज्ञप्ति नहीं देना ।)

सूत्र - २१६

धैर्य-उत्थान-उत्साह-कर्म-बल-वीर्य से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । इनको नियम से आत्मा में धारण करना। अविनीत को कभी ये ज्ञान मत देना ।

सूत्र - २१७

जन्म-मृत्यु-क्लेश दोष से रहित भगवंत महावीर के सुख देनेवाले चरण कमल में विनय से नम्र हुआ मैं वन्दना करता हूँ ।

सूत्र - २१८

ये संग्रहणी गाथाएं हैं ।

१७-चंद्रप्रज्ञप्ति-उपांगसूत्र-६ हिन्दी अनुवाद पूर्ण

आगमसूत्र-१७- चंद्रप्रज्ञप्ति का
मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમ:

१७

चंद्रप्रज्ञप्ति

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઈટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઈમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઈલ 09825967397